हरे कृष्ण युग

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

हरे कृष्ण युग

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कोन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम
जुहू, मुंबई ४०० ०४९

Web : www.krishna.com
www.indiabbt.com
E-mail: bbtadmin@pamho.net

Hare Krishna Yuga (Hindi)

पहला मुद्रण : १४,८०० प्रतियाँ
दूसरे से आठवाँ मुद्रण तक : १,९५,००० प्रतियाँ
नौवाँ मुद्रण, अप्रैल २००९ : ४०,००० प्रतियाँ

© १९९२-१९९५ भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश को पुनरुत्पादित, प्रतिलिपित नहीं किया जा सकता। किसी प्राप्य प्रणाली में संग्रहित नहीं किया जा सकता अथवा अन्य किसी भी प्रकार से चाहे इलेक्ट्रोनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग से संचित नहीं किया जा सकता। इस शर्त का भंग करने वाले पर उचित कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई द्वारा भारत में मुद्रित। P1

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप	राजविद्या : ज्ञान का राजा
श्रीमद्भागवतम् (१८ भागों में)	जीवन का स्रोत जीवन
श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ भागों में)	जन्म-मृत्यु से परे
पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण	कर्मयोग
भक्तिरसामृतसिन्धु	रसराज श्रीकृष्ण
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत	प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा
श्रीउपदेशामृत	कृष्ण की ओर
श्रीईशोपनिषद्	कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा	कृष्णभावनामृत : एक अनुपम उपहार
भागवत का प्रकाश	पुनरागमन : पुनर्जन्म का विज्ञान
आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान	योगपथः आधुनिक युग के लिए योग
कृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति	योग की पूर्णता
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर	नारद भक्ति-सूत्र
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल	गीतासार
का शिक्षामृत	गीतार गान (बंगला)
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ	भगवद्दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के जीवनकाल के पश्चात् उनके उपदेशों से संकलित किये हुए ग्रंथ :

मृत्यु की पराजय	ज्ञान की तलवार
आत्मा का प्रवास	अध्यात्म और २१वीं सदी
प्रकृति के नियम	हरे कृष्ण चुनौती

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई ४०० ०४९.

ये पुस्तकें हरे कृष्ण केन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। कृपया अपने निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें।

परा चेतना

"परमात्मा सभी के हृदय में विद्यमान एवं सर्वत्र स्थित रहने के कारण प्रत्येक अस्तित्व के विषय में चेतन हैं। यह सिद्धान्त कि आत्मा और परमात्मा एक हैं, स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि एक व्यक्तिगत आत्मा की चेतना, परा चेतना के रूप में कार्य नहीं कर सकती। इस परा चेतना की तभी प्राप्ति हो सकती है, जब व्यक्तिगत चेतना का परा चेतना से सामंजस्य कर दिया जाये और सामंजस्य स्थापित करने की यह विधि शरणागति अर्थात् कृष्णभावनामृत कहलाती है।"

कृष्णभावनामृत सर्वोच्च योगाभ्यास है जिसे प्रशिक्षित भक्तियोगी सम्पन्न करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त मानक योगाभ्यास सूत्र एवं पतंजलि योगपद्धति द्वारा समर्थित योग साधन, आजकल किए जा रहे हठयोग से भिन्न है, जो पश्चिमी देशों में प्रायः समझा जाता है।

वास्तविक योगाभ्यास का अर्थ है इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना और ऐसा नियन्त्रण हो जाने के पश्चात्, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीनारायण स्वरूप पर मन को एकाग्र करना। भगवान् कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम आदि भगवान् हैं तथा शंख, पद्म, गदा एवं चक्र से सुशोभित चार भुजाओं वाले सभी अन्य विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण के स्वांश विस्तार हैं।

भगवद्गीता में संस्तुत किया गया है कि हमें भगवान् के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। मन को एकाग्र करने का अभ्यास करने के लिए, व्यक्ति को पवित्र वातावरण के द्वारा पवित्र किए गए एकान्त स्थान में जाकर बैठना होता है, और योगी को ब्रह्मचर्य के विधि-विधानों का पालन करना चाहिए—अर्थात् सुदृढ़ता के साथ आत्म-संयम और ब्रह्मचर्य से युक्त जीवन व्यतीत करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति की घनी आबादी के नगर में, उच्छृंखल जीवन, अप्रतिबंधित कामभोग और जिह्वा का निःसंकोच प्रयोग वाला जीवन बिताते हुए योग का अभ्यास नहीं कर सकता।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि योगाभ्यास का अर्थ है इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना और इन्द्रियों पर नियन्त्रण का

आरम्भ होता है जीभ पर नियन्त्रण करने से। आप जीभ को सभी प्रकार के निषिद्ध भोजन और पान करने की अनुमति देते हुए योगाभ्यास में किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं कर सकते हैं। यह एक बहुत ही खेदजनक तथ्य है कि अनेकानेक पथभ्रष्ट अप्रामाणिक तथाकथित योगी, पश्चिमी देशों में जा कर लोगों की योग करने की रुचि का शोषण कर रहे हैं। ऐसे अप्रामाणिक योगी सार्वजनिक रूप से यह कहने का भी साहस कर बैठते हैं कि मनुष्य मदिरा पान करने के साथ-साथ ध्यान का अभ्यास भी कर सकता है।

पाँच हजार वर्ष पूर्व, भगवद्गीता के संवाद में, भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को योग का अभ्यास करने की संस्तुति की। परन्तु अर्जुन ने योग की कठोर विधि और नियमों का पालन करने में अपनी असमर्थता स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी। हमें प्रत्येक कार्यक्षेत्र में व्यावहारिक बनना चाहिए। हमें योग के नाम पर कुछ आसन (शारीरिक व्यायाम) करने मात्र में अपना बहुमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए। हृदय में स्थित चतुर्भुज परमात्मा की खोज करना और ध्यान में उनका निरन्तर दर्शन करना ही वास्तविक योग

है। ऐसा नित्य-निरन्तर ध्यान समाधि कहलाता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी शून्य या निराकार वस्तु पर ध्यान करना चाहे, तो योगाभ्यास के द्वारा कुछ उपलब्धि प्राप्त करने के लिए बहुत लम्बे समय की आवश्यकता पड़ेगी। हम अपने मन को किसी शून्य या निराकार वस्तु पर एकाग्र नहीं कर सकते। वास्तविक योगाभ्यास तो सभी के हृदय में निवास करने वाले चतुर्भुज श्रीनारायण के स्वरूप पर मन को स्थिर करना है।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि ध्यान के द्वारा व्यक्ति यह समझ जाएगा कि भगवान् सभी के हृदय में सदैव स्थित हैं, भले ही वह इस बात को न जानता हो। भगवान् सभी के हृदय में स्थित हैं। न केवल वे मनुष्य के हृदय में स्थित हैं, वरन् वे कुत्ते और बिल्ली के हृदय में भी स्थित हैं। भगवद्गीता यह घोषणा करती हुई इसे प्रमाणित करती है कि जगत के परम नियन्त्रक ईश्वर सभी के हृदय में स्थित हैं। वे केवल सभी के हृदय में ही उपस्थित नहीं अपितु परमाणु के भीतर भी हैं। कोई स्थान रिक्त नहीं है; कोई स्थान भगवान् की उपस्थिति के बिना नहीं है।

भगवान् का वह पक्ष जिसके द्वारा वे प्रत्येक स्थान में उपस्थित हैं, परमात्मा कहलाता है। आत्मा का अर्थ है व्यष्टि जीव और परमात्मा का अर्थ है व्यष्टि परम पुरुष। आत्मा और परमात्मा दोनों ही का अपना-अपना स्वरूप (व्यक्तित्व) है। किन्तु उनके बीच अन्तर यह है कि आत्मा केवल एक विशेष स्थान में उपस्थित है जबकि परमात्मा सर्वत्र उपस्थित हैं।

इस सम्बन्ध में, सूर्य का उदाहरण बहुत सुन्दर है। एक व्यष्टि मनुष्य भले ही एक स्थान पर स्थित हो, परन्तु सूर्य विशिष्ट व्यष्टि व्यक्ति होने पर भी प्रत्येक व्यष्टि मनुष्य के सिर पर उपस्थित है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसे बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया गया है। इसलिए, भगवान् समेत सभी प्राणियों में समान गुण होने पर भी परमात्मा और व्यष्टि जीवात्मा में विस्तार के परिमाण में भेद है। भगवान् या परमात्मा अपना विस्तार लाखों विभिन्न रूपों में कर सकते हैं जबकि व्यष्टि जीवात्मा ऐसा नहीं कर सकता।

परमात्मा सबके हृदय में स्थित होने के कारण, सभी के भूत, वर्तमान और भविष्य के कार्यकलापों को देख सकते हैं। उपनिषदों में परमात्मा को व्यष्टि जीवात्मा के साथ बैठा हुआ

सखा और साक्षी कहा गया है। मित्र के रूप में वे व्यष्टि जीवात्मा को, उसके घर, भगवान् के धाम में वापस ले जाने के लिए सदा ही अधीर रहते हैं। साक्षी के रूप में, वे जीव के कर्म के फलस्वरूप सभी प्रकार के वरदानों को देने वाले हैं। जीवात्मा जो भी इच्छा करे, परमात्मा उसे प्राप्त करने में उसे सब प्रकार की सुविधाएँ देते हैं। परन्तु वे अपने मित्र को उपदेश देते हैं कि वह अन्त में दूसरे सभी कार्यों को छोड़कर केवल भगवान् की शरण में आ जाए जिससे उसको सच्चिदानन्द जीवन (ज्ञान से पूर्ण चिरस्थायी आनन्द का नित्य जीवन) प्राप्त हो सके। सभी प्रकार के योगों के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रामाणिक और व्यापक रूप से अध्ययन किए जाने वाले ग्रन्थ भगवद्गीता का यही अन्तिम उपदेश है।

भगवद्गीता का उपरोक्त अन्तिम उपदेश योग साधना की सिद्धि के विषय में अन्तिम शब्द है। भगवद्गीता में आगे कहा गया है कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में सदैव मग्न रहता है वह सर्वोच्च योगी है। यह कृष्णभावनामृत है क्या?

जिस प्रकार व्यष्टि आत्मा अपनी चेतना के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में सर्वत्र उपस्थित है, उसी प्रकार परमात्मा अपनी परा

चेतना के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि में उपस्थित हैं। इस परम चेतना का अनुकरण व्यष्टि आत्मा के द्वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि इस का बोध सीमित है। उदाहरण के लिए, मैं समझ सकता हूँ कि मेरे सीमित शरीर में क्या हो रहा है, परन्तु दूसरे के शरीर में क्या हो रहा है मैं उसका अनुभव नहीं कर सकता। मैं अपनी चेतना के द्वारा अपने सम्पूर्ण शरीर में उपस्थित हूँ, परन्तु मैं अपनी चेतना के द्वारा किसी अन्य के शरीर में उपस्थित नहीं हूँ। किन्तु परमात्मा सभी में उपस्थित और प्रत्येक स्थान पर स्थित होने के कारण प्रत्येक अस्तित्व के ज्ञाता हैं। यह सिद्धान्त कि आत्मा और परमात्मा एक है, स्वीकार करने के योग्य नहीं है क्योंकि जीवात्मा की चेतना परा चेतना के रूप में कार्य नहीं कर सकती। यह परा चेतना केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब जीवात्मा की चेतना का परम चेतना के साथ सामंजस्य हो जाये और यह सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया शरणागति अर्थात् कृष्णभावनामृत कहलाती है।

भगवद्गीता की शिक्षाओं से हम बहुत ही स्पष्ट ढंग से यह सीखते हैं कि अर्जुन आरम्भ में अपने सम्बन्धियों के साथ

युद्ध नहीं करना चाहते थे परन्तु भगवद्गीता को समझने के पश्चात् जब उन्होंने अपनी चेतना का सामंजस्य भगवान् कृष्ण की परा चेतना के साथ कर दिया, तब उनकी चेतना कृष्णभावनामृत बन गई। पूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित व्यक्ति श्रीकृष्ण के आदेशों के अनुसार ही कार्य करता है और इसलिए अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

कृष्णभावनामृत की साधना के आरम्भ में भगवान् का यह आदेश आध्यात्मिक गुरु रूपी आध्यात्मिक माध्यम के द्वारा मिलता है। जब व्यक्ति पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हो जाता है और प्रामाणिक गुरु के निर्देशन के अन्तर्गत श्रीकृष्ण में विनम्र श्रद्धा और प्रेम सहित, कर्म करता है तब सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया और अधिक दृढ़ एवं यथार्थ हो जाती है। इस अवस्था पर श्रीकृष्ण अन्दर से प्रेरणा द्वारा आदेश देते हैं। बाहर से भक्त को श्रीकृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि, आध्यात्मिक गुरु के द्वारा सहायता दी जाती है और भीतर से भगवान् सभी के हृदय में स्थित होने के कारण चैत्य गुरु के रूप में भक्त की सहायता करते हैं।

केवल यह समझ जाना कि भगवान् सभी के हृदय में स्थित हैं, सिद्धि नहीं है। हमें आन्तरिक और बाह्य, दोनों ही प्रकार से भगवान् से परिचित होकर कृष्णभावनामृत में कार्य करना होता है। मानव जीवन में यह चरम सिद्धि की अवस्था है और सभी योग साधनाओं में सर्वोच्च अवस्था है।

एक सिद्ध योगी के लिए आठ प्रकार की सिद्धियाँ (अलौकिक उपलब्धियाँ) होती हैं :

(१) परमाणु से भी छोटा हो जाना (अणिमा)।
(२) पर्वत से भी बड़ा हो जाना (गुरुमा)।
(३) हवा से भी अधिक हल्का हो जाना (लघिमा)।
(४) किसी भी धातु से भारी हो जाना ।
(५) इच्छा अनुसार किसी प्रकार के भौतिक अनुभूति को पा लेना; उदाहरण के लिए एक लोक की सृष्टि करना (ईशित्व)।
(६) प्रभु के समान दूसरों को वशीभूत कर लेना।
(७) इस लोक में (या इस लोक से परे) ब्रह्माण्डें किसी भी स्थान पर मुक्त रूप से यात्रा कर लेना।

(८) अपनी मृत्यु का समय एवं स्थान चुन लेना और जहाँ कहीं इच्छानुसार पुनः जन्म लेना।

परन्तु जब कोई भगवान् से आदेश प्राप्त करने की सिद्ध अवस्था तक उन्नति कर लेता है तो वह उपरोक्त वर्णित भौतिक उपलब्धियों की अवस्था से ऊँचा उठ जाता है।

योग साधना में प्राणायाम (श्वास को रोकना) जिसका प्रायः अभ्यास किया जाता है, साधना की प्रारम्भिक स्थिति है। परमात्मा पर ध्यान इससे आगे का पग है। अद्‌भुत लौकिक सफलता की प्राप्ति भी इससे केवल एक ही पग आगे है। परन्तु परमात्मा के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना और उनसे आदेश लेना, सिद्धि की सर्वोच्च अवस्था है।

प्राणायाम और ध्यान का योगाभ्यास करना इस युग में बहुत कठिन है। वे पाँच हजार वर्ष पहले भी कठिन थे, अन्यथा अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के प्रस्ताव को ठुकराया न होता। यह कलियुग पतित युग कहलाता है। वर्तमान काल में, लोगों की आयु प्रायः कम होती है और वे आत्मसाक्षात्कार या आध्यात्मिक जीवन को समझने में अत्यन्त मन्दबुद्धि होते हैं। इतना ही नहीं, वे अधिकतर

अभागे भी हैं और इसलिए यदि किसी में आत्मसाक्षात्कार की थोड़ी सी रुचि हो भी, तो वह अनेकानेक कपटी लोगों के द्वारा मार्गभ्रष्ट कर दिया जाता है। योग की सिद्ध अवस्था की अनुभूति करने का यथार्थ में केवल एक ही ढंग है और वह है भगवद्गीता के सिद्धान्तों का उस प्रकार पालन करना, जिस प्रकार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने किया था। यह योगाभ्यास की सबसे अधिक सरल और सर्वोच्च सिद्धि है।

भगवान् श्रीचैतन्य ने कृष्णभावनामृत का व्यावहारिक प्रदर्शन केवल कृष्ण-नाम कीर्तन के द्वारा करके दिखलाया था जिनका वर्णन वेदान्त, श्रीमद्भागवत और अनेक महत्त्वपूर्ण पुराणों में आया है। अधिकांश भारतीय इस योगाभ्यास की साधना करते हैं और अब अमेरिका एवं अन्य देशों के अनेक नगरों में भी यह योगाभ्यास धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इस युग के लिए यह बहुत सरल और व्यावहारिक है, विशेषतः उन लोगों के लिए जो योग में सफलता प्राप्त करने के लिए गम्भीर हैं। कोई भी दूसरी विधि इस युग में सफल नहीं हो सकती है।

स्वर्ण युग अर्थात् सत्य युग में ध्यानयोग की विधि का

यथोचित रूप से पालन करना सम्भव था, क्योंकि उस युग में लोग औसतन एक लाख वर्ष तक जीवित रहते थे।

किन्तु वर्तमान युग में यदि आप व्यावहारिक योग में सफलता चाहते हैं तो इस महामन्त्र का कीर्तन कीजिए,

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

और स्वयं अनुभव किजिए कि आप किस प्रकार प्रगति कर रहे हैं। व्यक्ति को यह स्वयं ही जानना चाहिए कि वह योगाभ्यास करने में कितनी प्रगति कर रहा है।

भगवद्गीता में कृष्णभावनामृत के अभ्यास को राजविद्या (सभी विद्याओं का राजा), राजगुह्यम् (आध्यात्मिक साक्षात्कार का सबसे अधिक गोपनीय साधन), पवित्रम् (पवित्रों में सबसे अधिक पवित्र), सुसुखम् (सुखपूर्वक किया जाने वाला) और अव्ययम् (अविनाशी) कहा गया है।

जिन्होंने इस सर्वश्रेष्ठ भक्तियोग की साधना—कृष्ण के दिव्य प्रेम में भक्ति—को ग्रहण किया है, वे साक्षी दे सकते हैं कि वे कितने सुन्दर ढंग से इस सुखद और सरल साधना का रसास्वादन कर रहे हैं। योग का अर्थ है इन्द्रियों का

नियंत्रण और भक्तियोग का अर्थ है इन्द्रियों का शुद्धिकरण। जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं तब वे अपने आप नियन्त्रित भी हो जाती हैं। आप किसी कृत्रिम साधन के द्वारा इन्द्रियों के कार्यों को नहीं रोक सकते हैं, परन्तु यदि आप इन्द्रियों को शुद्ध कर लें, तो न केवल वे निकृष्ट कार्यों को करने से रुक जाती हैं वरन् वे भगवान् की दिव्य सेवा में सार्थक रूप से संलग्न हो जाती हैं।

कृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति हमारी मनगढ़ंत कल्पनाओं की रचना नहीं है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में इसे निर्धारित किया गया है जिसके अनुसार जब हम कृष्ण में चिन्तन, कृष्ण में कीर्तन, कृष्ण में जीवन, कृष्ण में भोजन, कृष्ण में चर्चा, कृष्ण में आशा तथा कृष्ण में निर्भरता का आश्रय लेते हैं तब हम निःसन्देह श्रीकृष्ण के पास लौट जाते हैं। कृष्णभावनामृत का यही सार है।

भगवत् प्रेम के अवतार

"श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं और वे एक अत्यधिक सरल विधि के द्वारा शिक्षा दे रहे हैं कि भगवत्प्रेम का किस प्रकार विकास किया जाए...मनुष्य साक्षात्कार की अनेकानेक विधियों के कारण उलझन में पड़े हुए हैं। वे ध्यान अथवा योग की यथार्थ अनुष्ठान-विधियों का पालन नहीं कर सकते; यह सम्भव ही नहीं है। अतएव भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि यदि कोई इस कीर्तन की विधि को ग्रहण कर ले तो वह साक्षात्कार के स्तर की तात्कालिक प्राप्ति कर सकता है।"

स्वर्ण अवतार, श्रीचैतन्य महाप्रभु भारत में लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व अवतरित हुए। भारतीय प्रथाओं के अनुसार जब भी किसी शिशु का जन्म होता है तब ज्योतिषी को बुलवाया जाता है। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रकट हुए तब उनके पिता ने गर्गमुनि को आमन्त्रित किया

था और गर्गमुनि ने कहा, "यह शिशु पूर्व में तीन वर्णों यथा लाल तथा स्वर्ण वर्णों में प्रकट हो चुके है और सम्प्रति यह श्याम वर्ण में अवतरित हुआ है।" शास्त्र कृष्ण के वर्ण को श्यामल बताते हैं, मेघों के वर्ण के समान। ऐसा समझा जाता है कि भगवान् चैतन्य स्वर्ण वर्ण वाले कृष्ण हैं।

वैदिक शास्त्रों में भगवान् चैतन्य के भगवान् कृष्ण का अवतार होने के अनेकों प्रमाण हैं, विदुषीगण तथा भक्त इस की पुष्टि करते हैं। श्रीमद्भागवतम् में वर्णन है कि इस वर्तमान समय (कलियुग) में श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् के अवतार सदा ही श्रीकृष्ण का वर्णन करने में संलग्न रहेंगे। वे श्रीकृष्ण हैं परन्तु कृष्ण-भक्त के रूप में वे स्वयं अपना वर्णन करते हैं। और इस युग में उनके शरीर का रंग कृष्ण (काला) नहीं होगा। इसका अर्थ हुआ कि वह रंग शुक्ल (सफेद), रक्त (लाल) अथवा पीत (सुनहरा या गोरा), हो सकता है क्योंकि ये चार रंग—सफेद, लाल, पीला और काला—विभिन्न युगों के अवतारों द्वारा अपनाए गए रंग हैं। चूँकि लाल, श्वेत और काला रंग पूर्व के अवतारों द्वारा ग्रहण किया जा चुका था अतः श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा बाकी बचा हुआ

चौथा सुनहरा रंग स्वीकार किया गया। उनका रंग काला नहीं है, परन्तु वे हैं श्रीकृष्ण।

इस अवतार की दूसरी विशेषता यह है कि वे सदा ही अपने पार्षद-जनों के साथ रहते हैं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के चित्र में हम देखेंगे कि उनके साथ कीर्तन करते हुए अनेकानेक भक्त सदा ही रहते हैं। जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं उनके दो उद्देश्य होते हैं, जैसा कि भगवद्गीता (४.८) में कहा गया है। वहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं—"जब-जब मैं प्रकट होता हूँ, मेरा उद्देश्य साधुओं का उद्धार करना और असुरों का नाश करना होता है।" जब भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए तब उनको अनेक असुरों का वध करना पड़ा था। यदि हम भगवान् श्रीविष्णु का चित्र देखें तो उनके पास शंख, पद्म, गदा और चक्र रहते हैं। गदा और चक्र असुरों का वध करने के लिए हैं। इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—असुर और भक्त। भक्त देवता भी कहलाते हैं और वे लगभग ईश्वर के ही समान हैं, क्योंकि उनमें दैवी गुण होते हैं। जो भक्त हैं उनको देवता कहा जाता है और जो अभक्त हैं, नास्तिक हैं, वे असुर कहलाते हैं। तो भगवान् श्रीकृष्ण या ईश्वर दो

प्रयोजनों के लिए यहाँ आते हैं—भक्तों की रक्षा करने के लिए और दुष्टों का नाश करने के लिए। इस युग में भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का मिशन भी यही है—भक्तों की रक्षा करना और अभक्तों को नष्ट करना। परन्तु इस युग में उन का अस्त्र भिन्न है। वह अस्त्र चक्र, गदा अथवा कोई घातक अस्त्र नहीं है—उनका अस्त्र है "संकीर्तन आंदोलन।" भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आंदोलन का आरम्भ करके लोगों की आसुरी प्रवृत्ति का वध किया। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का यह विशेष महत्त्व है। इस युग में लोग पहले से ही अपनी हत्या कर रहे हैं। उन्होंने परमाणु अस्त्रों की खोज की है, जिनके द्वारा वे स्वयं अपना वध कर सकते हैं। इसलिए श्रीभगवान् को उनका वध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु महाप्रभु लोगों की आसुरी प्रवृत्ति का वध करने के लिए प्रकट हुए। यह इस कृष्णभावनामृत आंदोलन के द्वारा सम्भव है।

इसलिए श्रीमद्भागवत् में यह कहा गया है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु इस युग में भगवान् के अवतार हैं, और उनका पूजन कौन करता है? पूजा करने की विधि बहुत ही साधारण है।

भगवान् श्रीचैतन्य का एक चित्र उनके पार्षदों सहित रख लीजिए। बीच में भगवान् श्रीचैतन्य और उनके साथ उनके प्रधान पार्षद—नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर और श्रीवास हैं। हमें चित्र को केवल रख लेना है। हम चित्र को कहीं भी रख सकते हैं। ऐसा नहीं कि इस चित्र को देखने के लिए किसी को हमारे पास आना पड़ता है। कोई भी इस चित्र को अपने घर में रख सकता है, इस हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है और इस प्रकार से भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की पूजा कर सकता है। यह एक साधारण विधि है। परन्तु इस सरल विधि को ग्रहण कौन करेगा? केवल वे ही जिनके पास सद्बुद्धि (सुमेधसः) है। यदि कोई बिना किसी झंझट के, केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु का चित्र अपने घर पर रखता है और हरे कृष्ण का कीर्तन करता है, तो वह भगवद्-साक्षात्कार कर लेगा। कोई भी इस सरल विधि को अपना सकता है। इसमें कोई खर्च नहीं है; कोई कर (टैक्स) नहीं और न ही कोई बहुत बड़ा गिरजाघर अथवा मन्दिर बनाने की आवश्यकता है। कोई भी, कहीं भी, मार्ग पर या वृक्ष के नीचे बैठ सकता है और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर सकता हैं और

भगवान् की पूजा कर सकता है। इसलिए यह एक महान् अवसर है। उदाहरण के लिए, व्यापार या राजनीति में कभी-कभी व्यक्ति को एक महान् अवसर मिल जाता है। जो बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ हैं वे इसका लाभ उठा कर, उस महान् अवसर के द्वारा पहली बार में ही सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार इस युग में जिन व्यक्तियों के पास पर्याप्त बुद्धि है, वे इस संकीर्तन आंदोलन को अपना लेते हैं और बहुत शीघ्र ही उन्नति कर लेते हैं।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु को "गौरसुन्दर (कंचन वर्णी) अवतार" कहा जाता है। अवतार का अर्थ है, "अवतरण करना" या "नीचे उतरना।" जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी भवन की पाँचवी मंजिल या सौंवी मंजिल से नीचे आ सकता है, उसी प्रकार एक अवतार परव्योम (चिदाकाश) के वैकुण्ठ लोकों से नीचे आता है। यह आकाश जो हम अपने नेत्रों से या दूरबीन (टेलिस्कोप) के द्वारा देखते हैं, केवल भौतिक आकाश है। परन्तु इस आकाश से परे एक दूसरा आकाश है, जिसे अपने नेत्रों अथवा किसी यन्त्रों के द्वारा देख पाना सम्भव नहीं है। वह जानकारी भगवद्‌गीता में है : यह

कोई कल्पना नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस भौतिक आकाश के परे एक दूसरा आकाश है जिसे परव्योम (चिदाकाश) कहते हैं।

हमें भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों को यथारूप ग्रहण करना है। उदाहरण के लिए, हम छोटे बालकों को शिक्षा देते हैं कि इंगलैण्ड के परे जर्मनी और भारत नामक अन्य स्थान हैं और बालकों को इन स्थानों के विषय में शिक्षक के माध्यम से सीखना पड़ता है, क्योंकि वे स्थान उनकी बुद्धि से परे हैं। इसी प्रकार, इस भौतिक आकाश के परे एक दूसरा आकाश है। हम उसे जानने के लिए उसके विषय में कोई प्रयोग नहीं कर सकते, जिस प्रकार कि एक छोटा बालक जर्मनी अथवा भारत को ढूँढ़ने के लिए कोई प्रयोग नहीं कर सकता। यह सम्भव नहीं है। यदि हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें अधिकारी (महाजन) को स्वीकार करना ही पड़ता है। उसी प्रकार यदि हम यह जानना चाहते हैं कि इस भौतिक जगत के परे क्या है, तो हमको वैदिक प्रमाण को स्वीकार करना ही पड़ता है; अन्यथा उस विषय को जानने की कोई सम्भावना नहीं है। यह भौतिक ज्ञान के परे है। इस एक

ब्रह्माण्ड में दूर स्थित लोकों में नहीं जाया जा सकता है, तो फिर इस ब्रह्माण्ड के परे जाने के विषय में कहना ही क्या? यह गणना की गई है कि आधुनिक यन्त्रों सहित इस ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक में जाने के लिए, व्यक्ति को चालीस हजार प्रकाश-वर्षों तक यात्रा करनी पड़ेगी। तो हम इस भौतिक आकाश के क्षेत्र तक भी यात्रा नहीं कर सकते हैं। हमारे जीवन और साधन इतने सीमित हैं कि हम इस भौतिक जगत् के विषय में भी यथोचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रीमद्भगवद्गीता में, जब अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्न किया, "क्या आप कृपा करके इसकी व्याख्या करेंगे कि आपकी शक्तियाँ कहाँ तक कार्य कर रही हैं?" तो परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस विषय पर उनको अनेक उदाहरण दिए और अन्त में उन्होंने कहा, "प्रिय अर्जुन, मैं अपनी शक्तियों के विषय में क्या व्याख्या करूँ। वास्तव में, तुम्हारे लिए यह समझ पाना सम्भव नहीं है। परन्तु तुम मेरी शक्तियों के विस्तार के विषय में केवल कल्पना कर सकते हो; यह भौतिक जगत् जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, मेरी सृष्टि का केवल एक चौथाई प्रदर्शन है।" हम एक ब्रह्माण्ड की स्थिति

तक की भी कल्पना नहीं कर सकते और ब्रह्माण्ड असंख्य हैं। इस भौतिक आकाश के परे परव्योम (चिदाकाश) है और उसमें भी लाखों वैकुण्ठ लोक हैं। यह समस्त जानकारी वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। यदि मनुष्य वैदिक साहित्य को स्वीकार करे, तो वह यह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यदि कोई स्वीकार न करे, तो इसे जानने का और कोई दूसरा साधन नहीं है। यह हमारा चुनाव है। इसलिए वैदिक सभ्यता के अनुसार, जब कभी कोई आचार्य प्रवचन देते हैं, तो वे तत्काल वैदिक साहित्य से सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं। और तभी अन्य लोग उनके कथन को स्वीकार करेंगे : "हाँ, यह सही है।" न्यायालय में अधिवक्ता (वकील) न्यायालय के द्वारा दिए गए पहले के निर्णयों से सन्दर्भ देता है और यदि उसका मुकदमा ठोस है तो न्यायाधीश उसे स्वीकार कर लेता है। उसी प्रकार, यदि कोई वेदों से प्रमाण दे सके, तो यह समझा जाता है कि उसकी स्थिति वास्तविक है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इस युग के अवतार हैं और उनका वर्णन वैदिक साहित्य में आता है। हम किसी को तब तक अवतार नहीं मान सकते, जब तक उस व्यक्ति में शास्त्रों

में दिए गए लक्षण न पाए जाएँ। हम मनमाने ही, मतों के आधार पर भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु को एक अवतार नहीं मान लेते हैं। आजकल तो यह एक प्रथा अर्थात् फैशन सा हो गया है कि कोई भी मनुष्य आकर कह सकता है कि वह भगवान् है या भगवान् का एक अवतार है और कुछ मूर्ख तथा धूर्त लोग ऐसा मान भी लेंगे : "अरे, वह भगवान् है।" हम अवतार को इस प्रकार स्वीकार नहीं करते। हम लोग वेदों से प्रमाण माँगते हैं। अवतार का वर्णन वेदों में दिए गए वर्णनों से मेल खाना चाहिए; तभी हम उसको अवतार मानते हैं, अन्यथा नहीं : हर अवतार के लिए वेदों में वर्णन होता है : वे इस-इस स्थान पर प्रकट होंगे, उनका ऐसा रूप होगा, और वे इस प्रकार कर्म करेंगे। वैदिक प्रमाण का यही स्वरूप है।

श्रीमद्‌भागवत में अवतारों की एक सूची है और उसमें बुद्धदेव के नाम का वर्णन आता है। यह श्रीमद्‌भागवत पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई थी और वह भविष्य में होने वाले विभिन्न अवतारों के नामों का वर्णन करती है श्रीमद्‌भागवत कहती है कि भविष्य में भगवान्, श्रीबुद्धदेव के रूप में प्रकट

होंगे, उनकी माँ का नाम अंजन होगा और वे गया नामक स्थान में प्रकट होंगे। तो श्री बुद्धदेव दो हजार छह सौ वर्ष पूर्व प्रकट हुए थे और श्रीमद्भागवत उसमें जो कि पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई थी, उसमें इसका वर्णन था कि वे भविष्य में प्रकट होंगे। उसी प्रकार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का भी वर्णन आता है और इसी तरह कलियुग के अन्तिम अवतार का भी भागवत में वर्णन किया गया है। वहाँ वर्णन आता है कि इस कलियुग के अन्तिम अवतार कल्कि हैं। वे शम्भल नामक स्थान में विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। इस नाम का भारत में एक स्थान है और सम्भवतया यहाँ भगवान् प्रकट हों।

तो अवतार का वर्णन उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, महाभारत और अन्य वैदिक साहित्य में दिए गए वर्णनों से मेल खाना चाहिए। इस प्रकार वैदिक साहित्य के प्रमाणों और श्रील जीव गोस्वामी जैसे महान् प्रकाण्ड गोस्वामियों के भाष्य के आधार पर, जो संसार के सर्वोच्च विद्वान् और दार्शनिक थे, हम भगवान् श्रीचैतन्य को श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

भगवान् श्रीचैतन्य क्यों प्रकट हुए? भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "सब प्रकार के धर्मों को त्याग कर केवल मेरी सेवा में संलग्न हो जाओ। मैं पापों के कारण मिलने वाले सभी फलों से तुम्हारी रक्षा करूँगा।" इस भौतिक जगत में, इस बद्ध जीवन में, हम केवल पापमय फलों की सृष्टि कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त और कोई कार्य है ही नहीं। पापों के फल के कारण ही हमें यह शरीर प्राप्त हुआ है। यदि हमारे पापों के फल समाप्त हो जाएं तो हमें भौतिक शरीर न लेना पड़े; हमें एक आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो जाए।

आध्यात्मिक शरीर क्या होता है? आध्यात्मिक शरीर वह शरीर है जो जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से मुक्त हो। वह शरीर सच्चिदानन्द है। विभिन्न इच्छाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के शरीरों की सृष्टि होती है। जब तक विभिन्न प्रकार के सुखों के लिए हमारी इच्छाएँ बनी रहेंगी, तब तक हमें विविध प्रकारे के भौतिक शरीर स्वीकार करने ही पड़ेंगे। श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् इतने दयालु हैं कि हम जो कुछ भी चाहते हैं वे दे देते हैं। यदि हम शेर का शरीर चाहें जिसमें शेर के समान

बल हो और ऐसे दाँत हों जिनके द्वारा पशुओं को पकड़ कर उनके ताजे रक्त का पान किया जा सके तो श्रीकृष्ण हमको वह अवसर भी देंगे और यदि हम एक सन्त अर्थात् केवल भगवान् की सेवा में संलग्न भक्त का शरीर चाहते हैं, तो भगवान् हमें वैसा ही शरीर दे देंगे। यह भगवद्गीता में कहा गया है।

यदि कोई व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार की विधि अर्थात् योग में संलग्न हो और किसी प्रकार उस विधि को पूर्ण करने में असफल रह जाये, तो उसे एक दूसरा अवसर दिया जाता है; उस व्यक्ति का जन्म विशुद्ध ब्राह्मण अथवा धनी मनुष्य के परिवार में होता है। यदि कोई इतना भाग्यशाली है कि उसे ऐसे परिवार में जन्म मिले, तो उसे आत्म-साक्षात्कार का महत्त्व समझने की समस्त सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। जीवन के आरम्भ से ही, हमारे कृष्णभावनाभावित बालक यह अवसर प्राप्त कर रहे हैं कि किस प्रकार भगवन्नाम कीर्तन एवं नृत्य करना सीखा जाये। तो जब वे बड़े होंगे तो उनमें परिवर्तन नहीं आएगा; उल्टे वे स्वतः ही प्रगति करेंगे। ये बालक अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं। चाहे उनका जन्म अमेरिका में हुआ

हो अथवा यूरोप में, बालक प्रगति करेंगे यदि उनके माता-पिता भक्त हों। उन्हें यह सुअवसर मिलेगा ही। यदि एक शिशु भक्तों के परिवार में जन्म लेता है, तो इसका अर्थ हुआ कि उसने अपने पिछले जन्म में योग की विधि को अपनाया था, परन्तु किसी संयोगवश वह उस विधि को पूरा नहीं कर सका। इसलिए बालक को एक दूसरा अवसर दिया जाता है जिससे वह उत्तम माता-पिता की देख-रेख में आगे उन्नति करे। इस प्रकार, जैसे ही व्यक्ति भगवद्भावनामृत के अपने विकास को पूर्ण कर लेता है, तब उसको फिर इस भौतिक जगत् में जन्म नहीं लेता पड़ता, परन्तु वह वैकुण्ठ जगत् में लौट जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं (४.९) :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन, यदि कोई मेरे जन्म-तिरोभाव और कार्यों को समझ लेता है तो केवल ऐसा समझने के कारण ही उसको यह शरीर त्यागने के पश्चात् वैकुण्ठ जगत् में जन्म लेने का अवसर दिया जाता है। हमें यह शरीर त्यागना ही पड़ेगा—

आज, कल या परसों; हम इससे बच नहीं सकते हैं, परन्तु जिसने श्रीकृष्ण को समझ लिया है उसे पुनः भौतिक शरीर नहीं लेना पड़ेगा। वह सीधे ही वैकुण्ठ जगत् को जाता है और किसी एक वैकुण्ठ लोक में जन्म लेता है। अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे ही किसी को यह भौतिक शरीर मिलता है—इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता कि वह शरीर भारत में, चन्द्रमा में, सूर्य में, ब्रह्मलोक में अथवा इस भौतिक जगत् में कहीं भी है—उसे यह जान लेना चाहिए कि यह उसके पापों के कारण ही है। पापों की कई कोटियाँ हैं और उनके अनुसार ही मनुष्य को भौतिक शरीर मिलता है। इसलिए हमारी वास्तविक समस्या यह नहीं है कि हम आहार, निद्रा, भय (आत्म रक्षा) और मैथुन किस प्रकार करें। हमारी वास्तविक समस्या तो यह है कि कैसे हम वह शरीर प्राप्त करें जो भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक हो। सभी प्रकार की समस्याओं का यही चरम हल है। तो श्रीकृष्ण निश्चित आश्वासन देते हैं कि यदि कोई उनकी शरण में आ जाये, यदि कोई पूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित बन जाये, तो वे सब प्रकार के पापों के फलों से उसकी रक्षा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भगवद्गीता में यह आश्वासन दिया गया था, परन्तु ऐसे अनेकानेक मूर्ख व्यक्ति थे जो श्रीकृष्ण को समझ नहीं सके। भगवद्गीता में ऐसे लोगों को "मूढ़" कहा गया है। मूढ़ का अर्थ होता है—"महामूर्ख," "धूर्त" और श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, "मूढ़ यह नहीं जानते कि मैं वास्तव में क्या हूँ।" तो बहुत से व्यक्तियों ने श्रीकृष्ण को गलत समझा। यद्यपि श्रीकृष्ण ने हमें भगवद्गीता का यह सन्देश दिया, जिससे हम उनको समझ सकें परन्तु अनेक लोगों ने इस अवसर को खो दिया। इसलिए अपनी अहैतुकी दया के कारण श्रीकृष्ण एक भक्त के रूप में पुनः आए और उन्होंने हमें यह दिखलाया कि उनकी शरण किस प्रकार लेनी चाहिए। भगवद्गीता में भगवान् का अन्तिम उपदेश है "शरण लेना।" परन्तु मूढ़ अर्थात् महामूर्ख धूर्त व्यक्तियों ने कहा, "मैं भगवान् की शरण क्यों लूँ?" अतः यद्यपि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं फिर भी इस बार वे हमें व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह सिखाते हैं कि भगवद्गीता के उद्देश्य को अपने जीवन में किस प्रकार उतारें। बस, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य यही है। श्रीचैतन्य महाप्रभु किसी

असाधारण वस्तु की शिक्षा नहीं दे रहे हैं। वे भगवान् की शरण लेने की विधि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सिखा रहे हैं जो भगवद्गीता में पहले ही सिखाई जा चुकी थी। और दूसरी कोई भी शिक्षा नहीं है, परन्तु इसे विभिन्न प्रकारों से प्रस्तुत किया गया है, जिससे विभिन्न प्रकार के लोग उसको ग्रहण कर सकें और भगवान् तक पहुँचने का सुअवसर प्राप्त कर सकें।

श्रीचैतन्य महाप्रभु हमें भगवान् तक सीधे पहुँचने का अवसर देते हैं। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रधान शिष्य, श्रील रूप गोस्वामी, सर्वप्रथम श्रीचैतन्य महाप्रभु से मिले, तो वे बंगाल की सरकार में एक मन्त्री थे। परन्तु वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के अभियान में सम्मिलित होना चाहते थे। अतः श्रील रूप गोस्वामी ने अपने मन्त्री के पद का त्याग कर दिया और संकीर्तन अभियान में सम्मिलित होने के पश्चात् जब वे शरणागत हुए तो उन्होंने भगवान् श्रीचैतन्य की सुन्दर स्तुति की। वह स्तुति इस प्रकार है :

नमो महावदान्याय कृष्ण प्रेम प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

"हे प्रभो, आप सब अवतारों में से सर्वाधिक वदान्य (उदार) हैं।" ऐसा क्यों? कृष्णप्रेमप्रदाय ते—"क्योंकि आप प्रत्यक्ष रूप से भगवान् का प्रेम प्रदान कर रहे हैं। आपका दूसरा कोई उद्देश्य है ही नहीं। आपकी विधि इतनी सुन्दर है कि मनुष्य तत्क्षण ही भगवान् से प्रेम करना सीख सकता है। अतः आप सब अवतारों में से सर्वाधिक वदान्य हैं और स्वयं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त यह किसी के लिए भी सम्भव नहीं है कि वह इस प्रकार का वरदान दे सके। अतः मैं कहता हूँ कि आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं।" कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने—"आप श्रीकृष्ण हैं—परन्तु आपने श्रीकृष्णचैतन्य नाम धारण किया है। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।"

तो विधि यह है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं और वे एक बहुत ही साधारण विधि के द्वारा यह शिक्षा दे रहे हैं कि किस प्रकार भगवान् का प्रेम विकसित किया जाये। वे कहते हैं केवल हरे कृष्ण का कीर्तन करो।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"इस युग में, हरे कृष्ण महामन्त्र का केवल कीर्तन करते

जाओ। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प (दूसरी विधि) है ही नहीं।" साक्षात्कार की अनेकानेक विधियों के कारण लोग उलझन में पड़े हुए हैं। वे ध्यान या योग से सम्बन्धित वास्तविक विधियों का पालन नहीं कर सकते; यह सम्भव ही नहीं है। इसलिए भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि यदि कोई इस कीर्तन विधि को ग्रहण कर ले, तो वह साक्षात्कार के स्तर पर तत्काल पहुँच सकता है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा प्रतिपादित भगवद्प्रेम प्राप्त करने की कीर्तन विधि संकीर्तन कहलाती है। संकीर्तन एक संस्कृत शब्द है। सम् का अर्थ है सम्यक् "पूर्ण।" और कीर्तन का अर्थ है, "कीर्ति (यश) गाना" या "वर्णन" करना। तो पूर्ण वर्णन का अर्थ है परतत्त्व श्रीभगवान् की पूर्ण कीर्ति। ऐसा नहीं है कि कोई किसी भी वस्तु का वर्णन करे या किसी की भी कीर्ति गाए और वह कीर्तन होगा। व्याकरण की दृष्टि से भले ही वह कीर्तन हो परन्तु वैदिक प्रणाली के अनुसार कीर्तन का अर्थ है, परम सत्ता, परम सत्य, परम ईश्वर, भगवान् का वर्णन करना। कीर्तन इसे कहते हैं।

इस भक्ति का आरम्भ श्रवण की विधि से होता है। श्रवण

का अर्थ है—"सुनना।" और कीर्तन का अर्थ है—"वर्णन करना"। एक मनुष्य वर्णन करे और दूसरा सुने; अथवा वही मनुष्य वर्णन कर सकता है और सुन भी सकता है। उसे किसी और मनुष्य की सहायता की आवश्यकता नहीं है। जब हम हरे कृष्ण कीर्तन करते हैं, तो हम कीर्तन करते हैं और श्रवण भी करते हैं। यह पूर्ण है। यह पूर्ण विधि है परन्तु यह कीर्तन और श्रवण करना है क्या? हमें श्रीविष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण के विषय में ही कीर्तन करना और सुनना है। और किसी के विषय में नहीं। श्रवणं कीर्तनं विष्णो : हम सर्वव्यापक परम सत्य, भगवान् श्रीविष्णु को श्रवण की विधि के द्वारा समझ सकते हैं।

हमें श्रवण करना ही है। यदि कोई मात्र सुने तो वह आरम्भ है। किसी भी प्रकार की शिक्षा या भौतिक ज्ञान के विकास की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बालक की भान्ति, जैसे ही वह सुनता है, तत्काल वह प्रत्युत्तर दे सकता है और नृत्य कर सकता है। तो प्रकृति के द्वारा भगवान् ने हमें ये सुन्दर यन्त्र—कर्णेन्द्रिय (कान)—दिये हैं, जिससे हम सुन सकें। परन्तु हमें सही स्रोत से ही सुनना चाहिए। वह स्रोत

श्रीमद्भागवत में बताया गया है। हमें भागवत व्यक्तियों से ही सुनना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों को सताम् कहा जाता है। यदि कोई सही स्रोत अर्थात् एक स्वरूप सिद्ध व्यक्ति से श्रवण करे, तो उसका प्रभाव अवश्य ही होगा। और भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण के ये वचनामृत अत्यन्त ही स्वादिष्ट हैं। यदि किसी में पर्याप्त बुद्धि है तो वह उस विषय-वस्तु को अवश्य ही सुनेगा जो एक स्वरूप सिद्ध व्यक्ति के द्वारा कही जाती है। तब वह बहुत शीघ्र ही भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाएगा।

यह मनुष्य जीवन मुक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए है। इसे अपवर्ग अर्थात् बन्धन से मुक्ति कहते हैं। हम सब बन्धन में फँसे हुए हैं। इस भौतिक शरीर को स्वीकार करने का अर्थ है कि हम पहले से ही बँध गए हैं। परन्तु हमें इस बन्धन की प्रक्रिया में प्रगति नहीं करनी चाहिए। वह विधि कर्म कहलाती है। जब तक हमारा मन कर्म करने में लीन है, तब तक हमें भौतिक शरीर ग्रहण करना ही पड़ेगा। मृत्यु के समय हमारा मन भले ही यह सोचता हो, "अरे! मैं इस कार्य को पूर्ण नहीं कर सका। अरे! मैं तो मर रहा हूँ। मुझे यह करना है। मुझे वह करना है।" इसका अर्थ यह हुआ कि

श्रीकृष्ण यह सब कार्य करने के लिए हमें एक दूसरा अवसर देंगे और हमें एक दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करना पड़ेगा। भगवान् हमें अवसर देंगे। "ठीक है, तुम इस कार्य को नहीं कर सके हो। अब कर लो। इस शरीर को ग्रहण करो।" अत: श्रीमद्भागवत् कहता है, "ये धूर्त लोग प्रमत्त (मतवाले) हो गए है और इसी नशे के कारण वे कुछ ऐसा कर रहे हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए। ये लोग क्या कर रहे हैं? महाराज धृतराष्ट्र इस के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रों का पक्षपात करने के लिए, पाण्डवों की हत्या करने की कुटिलतापूर्वक योजना बना रहे थे। तो श्रीकृष्ण ने अपने चाचा अक्रूरजी को उन्हें यह सलाह देने के लिए भेजा कि वे ऐसा न करें। धृतराष्ट्र अक्रूर के उपदेश समझ तो गए परन्तु उन्होंने कहा, "प्रिय अक्रूर, आप जो कह रहे हैं वह पूर्ण रूप से उचित है। परन्तु यह उपदेश मेरे हृदय में नहीं समा रहा है, अत: मैं अपनी नीति नहीं बदल सकता। मुझे इस नीति का पालन करना ही पड़ेगा और जो कुछ होता है होने दो।"

जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं तो

वे प्रमत्त (पागल) हो जाते हैं और उस पागलपन में वे उचित-अनुचित सब कुछ कर डालते हैं। उदाहरण के लिए, भौतिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण हैं जहाँ कोई किसी वस्तु के पीछे पागल हो गया और उसने हत्या जैसे अपराध कर डाले। वह व्यक्ति अपने को रोक नहीं सका। उसी प्रकार हम इन्द्रियतृप्ति के अभ्यस्त हो गए हैं। हम प्रमत्त हैं और इसीलिए हमारे मन सैदव कर्म में पूर्ण रूप से लीन रहते हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि हमारा शरीर, यद्यपि अस्थायी है, फिर भी वह समस्त दुर्भाग्य और कष्टों का भण्डार है; यह शरीर हमें सदा कष्ट देता रहता है। इन विषयों का अध्ययन किया जाना चाहिए। हम प्रमत्त न बनें। मनुष्य जीवन इसके लिए नहीं बना है। वर्तमान सभ्यता का दोष यह है कि लोग इन्द्रियतृप्ति के पीछे प्रमत्त हैं। बस यही बात है। वे जीवन का वास्तविक मूल्य नहीं जानते हैं और इसलिए वे जीवन के सर्वाधिक मूल्यवान् रूप अर्थात् शरीर (इस मनुष्य योनि) की उपेक्षा कर रहे हैं।

जब यह शरीर समाप्त हो जाता है, तो यह निश्चित नहीं है कि हमारा अगला शरीर किस प्रकार का होगा। कल्पना

कीजिए कि संयोग से मुझे अगले जीवन में एक वृक्ष का शरीर मिलता है। तब हजारों वर्षों तक मुझे एक स्थान पर खड़े रहना पड़ेगा, परन्तु लोग इस विषय में बहुत गम्भीर नहीं हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं, "उसमें क्या हानि है ? यदि मुझे खड़ा रहना पड़ा तो भी मैं उसको भूल जाऊँगा।" जीवन की निम्न योनियाँ विस्मृति में स्थित हैं। यदि एक पेड़ विस्मरणशील (भुलक्कड़) न होता तो उसके लिए जीवित रहना असम्भव हो जाता। कल्पना कीजिए कि हमें यह कह दिया जाए, "आप यहाँ तीन दिन तक खड़े रहिए।" क्योंकि हम विस्मरणशील नहीं हैं, अतः हम पागल हो जाएँगे। तो प्रकृति के नियम के द्वारा, जीवन की ये सभी निम्न योनियाँ विस्मरणशील हैं। उनकी चेतना का पूर्ण विकास नहीं होता है। वृक्ष में जीवन तो है परन्तु यदि कोई उसको काट भी डाले, तो उसकी चेतना का विकास न होने के कारण वह प्रतिक्रिया नहीं करता। इस प्रकार हमें इस मनुष्य योनि का उचित रूप से सदुपयोग करने के लिए बहुत सावधान रहना चाहिए। कृष्णभावनामृत अभियान जीवन में सिद्धि प्राप्त करने के लिए है। यह न कपट है और न ही किसी प्रकार का

शोषण परन्तु दुर्भाग्यवश लोग कपट किए जाने के अभ्यस्त हो गए हैं। एक भारतीय कवि ने लिखा है—"यदि कोई अच्छी बातें कहता है, तो लोग उससे कलह करेंगे—'अरे, तुम क्या निरर्थक बात कह रहे हो।' परन्तु यदि वह उनको धोखा दे, उनके साथ छल करे, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे।" तो यदि एक कपटी कहता है, "तुम केवल यह करो, मुझे मेरी फीस भर दे दो और छह माह में तुम भगवान् बन जाओगे।" तो लोग सहमत हो जाएँगे " जी हाँ, यह फीस लीजिए और मैं छह माह के भीतर भगवान् बन जाऊँगा। नहीं। इस ठग विद्या से हमारी समस्या हल नहीं होगी। इस युग में, यदि कोई वास्तव में जीवन की समस्याओं को सुलझाना चाहता है, तो उसे इस कीर्तन विधि का पालन करना पड़ेगा। यही अनुमोदित विधि है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

वर्तमान युग अर्थात् कलियुग में हम आत्म-साक्षात्कार या जीवन में सिद्धि प्राप्त करने के लिए कीर्तन के अतिरिक्त किसी भी अन्य विधि का पालन नहीं कर सकते। इस युग में

कीर्तन परमावश्यक है।

समस्त वैदिक साहित्य में यह पुष्ट किया गया है कि हमें परतत्त्व (परम सत्य) श्रीविष्णु का ध्यान करना चाहिए, किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति का नहीं। परन्तु विभिन्न युगों के लिए ध्यान करने की विभिन्न विधियों का अनुमोदन किया गया है। यौगिक ध्यान की विधि सत्ययुग में सम्भव थी, जब मनुष्य हजारों वर्ष तक जीवित रहते थे। अब लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे, परन्तु पिछले एक युग में ऐसे लोग थे जिन लोगों की आयु एक लाख वर्ष होती थी। वह युग सत्ययुग कहलाता था और ध्यानयोग उस समय सम्भव था। उस युग में महान् योगी वाल्मीकि मुनि ने साठ हजार वर्षों तक ध्यान किया था। तो ध्यान की विधि एक दीर्घकालीन (लम्बी) विधि है, जिसे इस युग में करना सम्भव नहीं है। यदि कोई प्रहसन प्रदर्शित करना चाहे, तो दूसरी बात है। परन्तु यदि कोई वास्तव में इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करना चाहता है तो सिद्ध होने में बहुत अधिक लम्बा समय की लगता है। अगले युग अर्थात् त्रेता युग में साक्षात्कार की विधि, वेदों में अनुमोदित किए विभिन्न प्रकार के यज्ञ-

अनुष्ठान करना था। तत्पश्चात्, द्वापर युग में इसकी विधि थी—मन्दिर में पूजा करना। इस वर्तमान कलियुग में उसी फल को हरि-कीर्तन अर्थात् परम पुरुष भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के कीर्तिगान की विधि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

और किसी भी प्रकार के कीर्तन का अनुमोदन नहीं किया गया है। यह हरि-कीर्तन पाँच सौ वर्ष पहले भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा बंगाल में प्रारम्भ किया गया था। बंगाल में वैष्णवों और शाक्तों के मध्य एक प्रतियोगिता बनी रहती है। शाक्तों ने एक विशेष प्रकार के कीर्तन का आरम्भ किया है जिसे काली-कीर्तन कहा जाता है। परन्तु वैदिक शास्त्रों में काली-कीर्तन करने की कोई संस्तुति नहीं की गई है। कीर्तन का अर्थ है हरि-कीर्तन। कोई यह नहीं कह सकता, "अरे, आप तो वैष्णव हैं। आप हरि-कीर्तन कर सकते हैं। मैं शिव-कीर्तन या देवी-कीर्तन या गणेश-कीर्तन करूँगा।" नहीं। वैदिक शास्त्र हरि-कीर्तन के सिवाय किसी और कीर्तन को प्रमाणित नहीं करते। कीर्तन का अर्थ है हरि-कीर्तन अर्थात् श्रीकृष्ण की कीर्ति का गान।

इस हरि-कीर्तन की विधि बहुत साधारण है :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

वास्तव में इस महामन्त्र में केवल तीन शब्द हैं—हरे, कृष्ण और राम। परन्तु कीर्तन करने के लिए वे इतने सुन्दर ढंग से व्यवस्थित किए गए हैं कि सभी लोग इस महामन्त्र का कीर्तन कर सकते हैं :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

चूँकि हमने इस हरे कृष्ण अभियान को पश्चिमी देशों में भी आरम्भ कर दिया है, अतः यूरोपियन, अमेरिकन, अफ्रिकन, इजीप्शियन और जापानी सभी लोग कीर्तन कर रहे हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। ये लोग बहुत प्रसन्नतापूर्वक कीर्तन कर रहे हैं और उसका फल प्राप्त कर रहे हैं। कठिनाई क्या है ? हम इस कीर्तन का वितरण निःशुल्क कर रहे हैं और यह बहुत ही सरल है। एकमात्र कीर्तन के द्वारा कोई भी आत्म-साक्षात्कार (स्वरूप साक्षात्कार), भगवद्-साक्षात्कार कर सकता है। और जब भगवद्-साक्षात्कार हो जाता है, तो उसमें प्रकृति का साक्षात्कार भी सम्मिलित हो जाता है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और शून्य सीख लेता है तो उसने पूरे गणित का अध्ययन कर लिया होता हैं, क्योंकि गणित का अर्थ है केवल इन दस अंको के स्थानों को अदल-बदल करना। बस इतना ही उसी प्रकार, यदि कोई श्रीकृष्ण का अध्ययन कर लेता है, तो उसका ज्ञान पूर्ण हो जाता है। और श्रीकृष्ण केवल इस हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के द्वारा बहुत सुगमतापूर्वक समझे जाते हैं। तो हम क्यों न इस सुअवसर को ग्रहण करें?

मानव समाज को प्रदान किए जा रहे इस सुअवसर को ग्रहण कीजिए। यह विधि बहुत प्राचीन और वैज्ञानिक है। यह मन की कोरी कल्पना नहीं है जो केवल तीन अथवा चार वर्ष तक ही चलेगी। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं, "यह दर्शन अव्यय (शाश्वत) और अविनाशी है। इसका कभी भी नाश नहीं होता।" कुछ समय के लिए यह भले ही ढक सकता है परन्तु यह कभी भी नष्ट नहीं होता। इसीलिए इसको अव्ययम् कहा जाता है। व्यय का अर्थ है "समाप्ति।" उदाहरण के लिए हमारे पास यदि सौ रुपये हों और हम एक के बाद एक व्यय करते जाएँ तो अगले दिन ये शून्य अर्थात्

समाप्त हो जाएँगे। यह व्यय है अर्थात् समाप्त हो जाने के योग्य। परन्तु कृष्णभावनामृत इस प्रकार की वस्तु नहीं है। यदि आप कृष्णभावनामृत के इस ज्ञान का अनुशीलन करें, तो उसमें वृद्धि होती जाएगी। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा इसको प्रमाणित किया गया है। आनन्दाम्बुधिवर्धनम्। आनन्द का अर्थ है "सुख," "दिव्य (इन्द्रियातीत) हर्ष" और अम्बुधि का अर्थ होता है "सागर।" भौतिक जगत् में हम देखते हैं कि सागर में वृद्धि नहीं होती है, परन्तु यदि कोई कृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का अनुशीलन करे, तो उसका दिव्य आनन्द बढ़ता ही जाएगा— *आनन्दाम्बुधिवर्धनम्।* और मैं प्रत्येक व्यक्ति को सदैव इस बात का बारम्बार स्मरण दिलाता हूँ कि यह विधि बहुत ही सरल है। कोई भी, कहीं भी कीर्तन कर सकता है। और इसमें न कोई कर देना पड़ता है और न ही कोई हानि है परन्तु लाभ बहुत अधिक है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस कीर्तन अभियान की व्याख्या अपने शिक्षाष्टक में की है। शिक्षा का अर्थ है "उपदेश" और अष्टक का अर्थ है "आठ"। उन्होंने हमें आठ श्लोक दिए हैं,

जिन से हमें कृष्णभावनामृत अभियान को समझने में सहायता मिल सके। मैं शिक्षाष्टक के प्रथम श्लोक की व्याख्या करूँगा। महाप्रभु कहते हैं, चेतोदर्पणमार्जनम्—मनुष्य को अपने हृदय को स्वच्छ करना चाहिए। मैं इसे अनेकानेक बार समझा चुका हूँ परन्तु यह, नीरस नहीं बनता। यह हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के समान है। इसका कीर्तन करने में कभी थकान का अनुभव नहीं होता। हमारे शिष्य (साधक) हरे कृष्ण महामन्त्र का प्रतिदिन चौबीसों घण्टे कीर्तन कर सकते हैं और वे कभी भी नहीं थकेंगे। वे नृत्य और कीर्तन निरन्तर करते रहेंगे। और कोई भी इसका प्रयत्न कर सकता है क्योंकि यह भौतिक नहीं है, अतः हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से कोई कभी भी नहीं थकेगा। भौतिक जगत में, यदि कोई व्यक्ति किसी चीज को बार बार कहता है, उदाहरण के लिए अपने किसी प्रिय नाम को तीन, चार या दस बार कहता है, तो वह कहते-कहते थक जाएगा। यह एक वास्तविकता है परन्तु चूँकि हरे कृष्ण कोई भौतिक ध्वनि नहीं है अतः यदि हम इस महामन्त्र का कीर्तन करते हैं, तो हम कभी भी नहीं थकेंगे। जो जितना अधिक हरे कृष्ण कीर्तन करेगा, उसके

हृदय से भौतिक धूल उतनी ही दूर होती जाएगी। और इस भौतिक जगत के भीतर उसके जीवन में आने वाली समस्याएँ उतनी ही अधिक हल हो जाएँगी।

हमारे जीवन की समस्या क्या है? हमें यही ज्ञात नहीं है। आधुनिक शिक्षा जीवन की वास्तविक समस्या के विषय में कभी भी ज्ञान नहीं देती है। यह भगवद्गीता में दर्शाया गया है। जो शिक्षित हैं और ज्ञान में प्रगति कर रहे हैं, उनको यह जानना चाहिए कि जीवन की समस्या क्या है। इस समस्या का भगवद्गीता में वर्णन किया गया है—हमें जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि की असुविधाओं को सदैव देखना चाहिए। दुर्भाग्यवश इन समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देता। जब मनुष्य को कोई व्याधि (बीमारी) हो जाती है तो वह सोचता है, "कोई बात नहीं। मैं डॉक्टर के पास जाऊँगा और वे मुझको कुछ दवा दे देंगे, जिससे मै ठीक हो जाऊँगा।" परन्तु वह समस्या पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करता। "मैं यह रोग चाहता तो नहीं था; फिर यह रोग क्यों हुआ? क्या रोग से मुक्त होना सम्भव नहीं है?" वह इस प्रकार कभी भी नहीं सोचता। ऐसा इसलिए है क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत

निम्न कोटि की है, अर्थात् पशु की बुद्धि के समान है। एक पशु कष्ट पाता है परन्तु उसके कोई बुद्धि नहीं होती। यदि एक पशु वधशाला में लाया जाता है और वह देखता है कि उसके आगे खड़े हुए पशु की हत्या की जा रही है तो भी वह पशु वहाँ खड़ा होकर सन्तोष के साथ घास खाता रहता है। यह पशु का जीवन है। वह यह नहीं जानता कि अगली बारी उसकी है और उसका भी वध कर दिया जाएगा। मैं स्वयं इसको देख चुका हूँ। एक काली मन्दिर में मैंने देखा है एक बकरा बलि दिए जाने के लिए तैयार खड़ा था जबकि समीप में एक दूसरा बकरा बहुत आनन्द के साथ घास खाए जा रहा था।

उसी प्रकार, यमराज ने महाराज युधिष्ठिर से पूछा, "इस संसार में सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु क्या है? क्या तुम इसकी व्याख्या कर सकते हो?" तो महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "जी हाँ। सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु यह है कि प्रत्येक पल हम देख सकते हैं कि हमारे मित्र, हमारे पिता और हमारे सम्बन्धियों की मृत्यु हो गई है, परन्तु हम सोच रहे हैं, मैं सदैव जीवित रहूँगा।" हम कभी भी यह नहीं

सोचते कि हमारी भी मृत्यु होगी, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक पशु कभी भी यह नहीं सोचता कि अगले पल उसकी भी हत्या की जा सकती है। वह घास से ही सन्तुष्ट है, बस यही। पशु इन्द्रियतृप्ति से सन्तुष्ट रहता है। वह यह नहीं जानता कि वह भी मरने जा रहा है।

मेरे पिताजी की मृत्यु हो चुकी है; मेरी माँ की मृत्यु हो चुकी है; उस पुरुष की मृत्यु हो चुकी है; इस स्त्री की मृत्यु हो चुकी है। तो मेरी भी मृत्यु होगी ही। तब मृत्यु के पश्चात् क्या? मुझे ज्ञात नहीं। यही तो समस्या है। लोग इस समस्या को गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते, परन्तु भगवद्गीता यह दर्शाती है कि इस तथ्य की शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। वास्तविक शिक्षा का अर्थ है, हम यह जिज्ञासा करें, क्यों? यद्यपि हम मरना नहीं चाहते, फिर भी मृत्यु आती है। वास्तविक जिज्ञासा यही है। हम वृद्ध नहीं होना चाहते। फिर भी हमारी वृद्धावस्था क्यों होती है? हमारी बहुत सी समस्याएँ हैं, परन्तु उन सब का सारतत्त्व यही है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस समस्या का हल हरे कृष्ण कीर्तन निर्धारित किया है। जैसे ही हमारा चित्त इस हरे

कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के द्वारा स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही समस्याओं से पूर्ण हमारा भवबन्धन रूपी दावानल बुझ जाता है। यह कैसे बुझता है ? जब हम अपने चित्त को स्वच्छ कर लेंगे तो हमें यह अनुभूति हो जाएगी कि हमारा सम्बन्ध कुछ भी इस भौतिक जगत् से नहीं है। चूँकि लोग इस भौतिक जगत् के साथ अपनी पहचान जोड़ रहे हैं, अतः वे सोचते हैं, "मैं एक भारतीय हूँ, मैं एक अंग्रेज हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ।" परन्तु यदि कोई हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है तो उसको यह अनुभूति हो जायेगी कि वह यह भौतिक शरीर नहीं है। "मेरा न इस भौतिक शरीर से और न ही इस भौतिक जगत् से कोई सम्बन्ध है। मैं आत्मा हूँ और भगवान् का अंश हूँ। मेरा भगवान् के साथ नित्य का सम्बन्ध है और मेरा इस भौतिक जगत् से कुछ भी प्रयोजन नहीं है।" यही मुक्ति अथवा ज्ञान क़हलाता है। यदि मैं अपने को भौतिक जगत से पृथक कर लूँ, तो मैं मुक्त हो जाऊँ और यह ज्ञान ब्रह्मभूत कहलाता है।

जिसे यह अनुभूति हो गई है, उस व्यक्ति के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। क्योंकि अभी हम अपने अस्तित्व

का इस भौतिक जगत से सम्बन्ध मान रहे हैं, अतः हमारे अनेकानेक कर्तव्य हैं। श्रीमद्भागवत कहती है कि जब तक आत्मसाक्षात्कार नहीं हो जाता, तब तक हमारे ऊपर बहुत से ऋण और कर्तव्य हैं। हम देवताओं के ऋणी हैं। देवताओं का अस्तित्व झूठा नहीं है। वे वास्तविक हैं। सूर्य, चन्द्रमा और वायु पर नियन्त्रण रखने वाले देवता हैं। जैसे शासन के विभागों में निर्देशक होते हैं, उसी प्रकार ताप-विभाग में सूर्य देवता हैं, वायु-विभाग में वरुण हैं और उसी प्रकार अन्य विभागों के लिए देवता हैं। वेदों में उनका वर्णन नियन्त्रक देवताओं के रूप में किया गया है, अतः हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, अनेक महान् ऋषि और दार्शनिक हैं जिन्होंने हमको ज्ञान दिया है और हम उनके ऋणी हैं। तो जैसे ही हम जन्म लेते हैं, वैसे ही हम अनेकानेक जीवों के ऋणी हो जाते हैं परन्तु इन सभी ऋणों से उऋण होना असम्भव है। इसलिए, वैदिक साहित्य संस्तुति करता है कि हमें श्रीकृष्ण के चरणारविन्द की शरण लेनी चाहिए और श्रीकृष्ण कहते हैं, "यदि कोई मेरी शरण लेता है, तो उसे फिर और किसी की शरण लेने की आवश्यकता

नहीं पड़ती है। "

अतएव जो कृष्णभावनाभावित भक्त हैं, उन्होंने श्रीकृष्ण की शरण ली है और इस शरणागति का आरम्भ श्रवण और कीर्तन है। श्रवणं कीर्तनं विष्णोः। तो हमारी प्रत्येक व्यक्ति से यह उत्कट विनम्र प्रार्थना है कि इस भगवन्नाम कीर्तन को स्वीकार करें। कृष्णभावनामृत का यह अभियान पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगाल में भगवान् श्रीचैतन्य के द्वारा आरम्भ किया गया था और अब सम्पूर्ण भारत में विशेष कर बंगाल में श्रीचैतन्य महाप्रभु के लाखों अनुयायी हैं। अब यह अभियान पश्चिमी देशों में भी आरम्भ हो रहा है; अतएव आप सब इसको समझने में बहुत गम्भीर बनिए। हम किसी दूसरे धर्म की आलोचना नहीं करते। इसको उस ढंग से मत देखिए। किसी अन्य धार्मिक विधि की आलोचना करने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। कृष्णभावनामृत लोगों को सर्वाधिक उत्कृष्ट धर्म—भगवद्प्रेम—प्रदान कर रहा है। बस, इतना ही! हम लोगों को भगवान् से प्रेम करने की शिक्षा दे रहे हैं। सभी लोग पहले से ही प्रेम कर रहे हैं, परन्तु वह प्रेम अभी त्रुटिपूर्ण में है। हम इस युवक या उस युवती को, इस देश अथवा उस

समाज को और यहाँ तक कि कुत्तों और बिल्लियों से प्रेम करते हैं, परन्तु हमें सन्तोष नहीं हो पाता। इसलिए हमें भगवान् से प्रेम करना चाहिए। यदि कोई भगवान् से प्रेम करने लगे तो वह सुखी हो जायेगा।

आप यह न सोचें कि यह कृष्णभावनामृत अभियान एक नवीन प्रकार का धर्म है। ऐसा कौन-सा धर्म है जो भगवान् की सत्ता को स्वीकार नहीं करता? कोई भगवान् को भले ही "अल्लाह" अथवा "कृष्ण" अथवा किसी और नाम से पुकार सकता है परन्तु ऐसा कौन-सा धर्म है जो भगवान् की सत्ता को स्वीकार नहीं करता? हम यही शिक्षा दे रहे हैं कि लोगों को केवल भगवान् से प्रेम करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम अनेक वस्तुओं के द्वारा आकर्षित होते हैं, परन्तु यदि हम भगवान् से प्रेम करने लगें, तो हम आनन्दित हो जाएँगे। तत्पश्चात् हमें किसी और से प्रेम करने की शिक्षा नहीं ग्रहण करनी पड़ेगी। अन्य सभी वस्तुएँ भगवद्प्रेम में स्वतः सम्मिलित हो जाती हैं। केवल भगवान् से प्रेम करने का प्रयत्न तो कीजिए। वृक्ष अथवा पौधों अथवा कीट-पतंगों से ही प्रेम करने का प्रयास न कीजिए; ऐसा करने से कदापि

सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। भगवान् से प्रेम करना सीखिए। यही भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का प्रयोजन है और हमारा भी यही प्रयोजन है।

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन

"...ध्यान की इस सरलतम विधि का इस युग के लिए अनुमोदन किया गया है। व्यावहारिक अनुभव के द्वारा भी, हम यह प्रतीति कर सकते हैं कि इस महामन्त्र अर्थात् मुक्ति दिलाने हेतु महान् मन्त्र के कीर्तन से मनुष्य आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होते हुए एक दिव्य आनन्द का आस्वादन कर सकता है...।"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस महामन्त्र के कीर्तन के द्वारा स्थापित की गई दिव्य शब्द-ध्वनि हमारी दिव्य चेतना को पुनर्जागृत करने की एक

सर्वोत्कृष्ट विधि है। जीवन्त आत्मा होने के कारण, हम सभी मौलिक रूप से कृष्णभावनाभावित जीव हैं, परन्तु अनादि काल से जड़ पदार्थ से संपर्क के कारण हमारी चेतना भौतिक वातावरण के द्वारा दूषित हो चुकी है। जिस भौतिक वातावरण में हम अब निवास कर रहे हैं, उसे माया कहा जाता है। माया का अर्थ है, "वह जो नहीं है।" और वह भ्रम क्या है? वह भ्रम यह है कि हम सभी भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जबकि वास्तव में हम उस प्रकृति के कठोर नियमों के बन्धन में बद्ध हैं। जब एक दास कृत्रिम भाव से सर्व-शक्तिशाली स्वामी का स्वाँग करने का प्रयत्न करता है, तो उसे भ्रम में पड़ा हुआ कहा जाता है। हम भौतिक प्रकृति के स्रोतों का शोषण करने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु वास्तव में हम उस की विषमताओं में अधिकाधिक फंसते जा रहे हैं। अत: यद्यपि हम प्रकृति पर विजय पाने के लिए कठिन संघर्ष में संलग्न हैं, तथापि हम उस पर अधिकाधिक निर्भर बनते जाते हैं। हम अपने शाश्वत कृष्णभावनामृत की पुनर्जागृति के द्वारा भौतिक प्रकृति के विरुद्ध यह भ्रामक संघर्ष तत्क्षण समाप्त कर सकते हैं।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे । यह एक दिव्य विधि है, जिसके द्वारा हम अपनी मौलिक, शुद्ध चेतना को पुनर्जाग्रत कर सकते हैं। इस दिव्य शब्द-ध्वनि के कीर्तन के द्वारा, हम अपने हृदय को सभी प्रकार के कुविचारों से स्वच्छ कर सकते हैं। इन समस्त कुविचारों की जड़ यह मिथ्या चेतना है कि मैं जो कुछ भी निरीक्षण कर रहा हूँ, उसका स्वामी हूँ।

कृष्णभावनामृत मन पर कोई कृत्रिम आरोपण नहीं है। यह भावनामृत जीव की मौलिक, स्वाभाविक शक्ति है। जब हम इस दिव्य शब्द-ध्वनि को सुनते हैं, तब यह चेतना पुनर्जाग्रत हो जाती है। ध्यान की इस सर्वाधिक सरल विधि का इस युग के लिए अनुमोदन किया गया है। व्यावहारिक अनुभव के द्वारा भी, हम यह प्रतीति कर सकते हैं कि इस महामन्त्र अर्थात् मुक्ति दिलाने हेतु महामन्त्र के कीर्तन में आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होते हुए एक दिव्य भाव का कोई भी व्यक्ति तत्क्षण आस्वादन कर सकता है। जीवन की भौतिक धारणा में हम इन्द्रियतृप्ति के विषय में व्यस्त हैं, जैसे कि हम निम्न पशु योनियों में हों। इस इन्द्रियतृप्ति के स्तर से

थोड़ी सी उन्नत अवस्था में आने पर मनुष्य इस भौतिक बन्धन से मुक्ति पाने के लिए मनोधर्म में संलग्न हो जाता है। इस मनोधर्म के स्तर से भी थोड़ी उन्नत अवस्था में आने पर जब मनुष्य कुछ बुद्धिमान् हो जाता है, तो वह सब कारणों के कारण श्रीभगवान् को अपने भीतर एवं बाहर ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है। अन्ततः जब वास्तव में इन्द्रिय, मन और बुद्धि की अवस्थाओं से परे जाकर मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर पहुँच जाता है तब वह दिव्य स्तर पर स्थित हो जाता है। हरे कृष्ण महामंत्र का यह कीर्तन आध्यात्मिक स्तर पर किया जाने लगता है और इस प्रकार यह शब्द-ध्वनि चेतना के सभी प्रकार के निम्न स्तरों को पार कर जाती है—अर्थात् ऐन्द्रिक, मानसिक और बौद्धिक स्तर। इसलिए इस महामंत्र के कीर्तन के लिए न महामन्त्र की भाषा समझने की आवश्यकता है और न ही कोई अनुमान अथवा बौद्धिक सन्तुलन की। यह स्वतः आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होता है और इस प्रकार बिना किसी पूर्व योग्यता के कोई भी इस कीर्तन में भाग ले सकता है। निःसन्देह, अधिक उन्नत अवस्था में, व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर

कोई अपराध—नामापराध, सेवापराध इत्यादि नहीं करेगा।

आरम्भ में हो सकता है, सभी सात्त्विक भाव जिनकी संख्या आठ है, उपस्थित न रहे। ये हैं : (१) स्तम्भ—जड़ बन जाना, (२) स्वेद—पसीना निकलना, (३) रोमाँच या पुलकित होना, (४) स्वर भेद—गद्गद् हो जाना, (५) कम्पन, (६) वैवर्ण्य, (७) अश्रु और (८) मूर्च्छा या प्रलय (समाधि)। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि थोड़ी देर का ही कीर्तन मनुष्य को तत्काल ही आध्यात्मिक स्तर पर ले जाता है और इस अवस्था का पहला लक्षण अर्थात् कीर्तन करने के साथ-साथ नृत्य करने का आवेग अनुभव करना, दिखने लगता है। हम व्यावहारिक रूप से इसे देख चुके हैं। कीर्तन और नृत्य में एक शिशु भी भाग ले सकता है। निःसन्देह, जो भौतिक जीवन में घोर रूप से फंसा हुआ है, उसे आदर्श स्तर तक आने के लिए कुछ अधिक समय लगता है परन्तु ऐसी भौतिकता में उलझा मनुष्य भी बहुत ही शीघ्र आध्यात्मिक स्तर तक उठ जाता हैं। जब भगवान् के विशुद्ध भक्त के द्वारा प्रेम भाव से मंत्र का कीर्तन किया जाता है, तो सुनने वालों पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है और

इसलिए यह कीर्तन भगवान् के शुद्ध भक्तों के श्रीमुख से सुना जाना चाहिए, जिससे कि तात्कालिक प्रभाव हो सके। जहाँ तक सम्भव हो, अभक्तों के मुख से कीर्तन सुनने से बचना चाहिए। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि साँप के होठों द्वारा छुआ गया दूध विषैला बन जाता है।

हरा शब्द भगवान् की शक्ति को सम्बोधित करने का एक रूप है और कृष्ण एवं राम शब्द स्वयं भगवान् को सम्बोधित करने के रूप हैं। कृष्ण और राम दोनों का ही अर्थ, "परम आनन्द" है और हरा भगवान् की परम आह्लादिनी शक्ति है जो सम्बोधन कारक में हरे शब्द में परिवर्तित हो जाती है। भगवान् की परम आह्लादिनी शक्ति हमें भगवान् तक पहुँचाने में सहायता करती है।

भौतिक शक्ति अर्थात् माया भी भगवान् की विविध शक्तियों में से एक है। और हम जीवात्मा भी शक्ति हैं, भगवान् की तटस्था शक्ति। जीवात्मा भौतिक शक्ति से श्रेष्ठ माना जाता है। जब परा (श्रेष्ठ) शक्ति अपरा (निम्न) शक्ति के सम्पर्क में आती है तो एक असंगत स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु जब परा तटस्था शक्ति, अन्तरंगा शक्ति हरा के

सम्पर्क में रहती है, तो वह अपनी सुखद एवं स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो जाती है।

हरे , कृष्ण एवं राम ये तीन शब्द महामन्त्र के दिव्य बीज शब्द (मन्त्र) हैं। इसका कीर्तन भगवान् और उनकी शक्ति के लिए एक आध्यात्मिक आह्वान है, जिससे बद्ध आत्मा की रक्षा हो सके। महामन्त्र का कीर्तन उस शिशु के यथार्थ रुदन के समान है जो अपनी माँ को अपने पास रहना चाहता है। माँ हरा भक्त को परम पिता भगवान् की कृपा को पाने में सहायता देती है और श्रद्धा के साथ महामन्त्र का कीर्तन करने वाले भक्त के सम्मुख भगवान् स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। अतएव, कलह और पाखण्ड के इस युग में :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

महामन्त्र के कीर्तन के समान आत्म-साक्षात्कार की और कोई भी विधि प्रभावशाली नहीं है।

कृष्णभावनामृत आधुनिक युग का योग

"ऐसा नहीं है कि यह अभियान केवल एक भावुक अभियान है। आप यह न सोचें कि ये युवक किसी धार्मिक भावुकता अथवा उन्माद के कारण नृत्य कर रहे हैं। जी नहीं। हमारी सर्वोच्च दार्शनिक एवं ब्रह्मविद्या युक्त पृष्ठभूमि है...। परन्तु यह सब सरलीकृत की हुई है। इस अभियान की सुन्दरता यही है। चाहे कोई एक महान् वैज्ञानिक हो अथवा एक बालक, वह किसी कठिनाई के बिना इस अभियान में भाग ले सकता है।"

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेय:कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

संकीर्तन अभियान की परम विजय हो। परम विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सोलह वर्ष

की आयु में पाँच सौ वर्ष पूर्व नवद्वीप (पश्चिमी बंगाल) में यह संकीर्तन अभियान आरम्भ किया था। ऐसा नहीं था कि उन्होंने किसी धार्मिक प्रणाली की रचना की हो, जैसा कि आज कल बहुत सारी धार्मिक प्रणालियों की रचना की जा रही है। वास्तव में धर्म को रचा नहीं जा सकता। धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम् (भागवत्)। धर्म का अर्थ है भगवान् के नियम, भगवान् के द्वारा दी गई आचार संहिता। निश्चय ही, हम राज्य के नियमों का पालन किए बगैर नहीं रह सकते; उसी प्रकार हम भगवान् के नियमों का पालन किए बिना जीवित नहीं रह सकते और भगवद्गीता (४.७) में भगवान् कहते हैं कि जब कभी भी धार्मिक कार्यों को संपन्न करने में असंगति होती है। (यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।) और अधार्मिक कार्यों में वृद्धि होती है— (अभ्युत्थानमधर्मस्य) उस समय मैं (कृष्ण) प्रकट होता हूँ—(तदात्मानं सृजाम्यहम्।) भौतिक जगत् में हम देख सकते हैं कि इसी सिद्धान्त को प्रदर्शित किया जाता है, क्योंकि जब कभी भी राज्य के नियम भंग किए जाते हैं, तो उस समय किसी विशिष्ट राज्याधिकारी अथवा आरक्षी

अधिकारी का "सामान्य स्थिति लाने के लिए" आगमन होता है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का पूजन गोस्वामियों द्वारा होता है। गोस्वामी छह थें—श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी। गो शब्द के तीन अर्थ होते हैं, भूमि, गाय और इन्द्रियाँ। और स्वामी का अर्थ होता है 'स्वामी'। तो गोस्वामी का अर्थ हुआ कि वे लोग इन्द्रियों के स्वामी थे। जब कोई इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् गोस्वामी बन जाता है, तो वह आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर सकता है। स्वामी का वास्तविक अर्थ यही है। स्वामी का अर्थ है कि व्यक्ति इन्द्रियों का दास नहीं वरन् उनका स्वामी हैं।

इन छह गोस्वामियों में से श्रील रूप गोस्वामी प्रधान थे और उन्होंने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्मान में एक सुन्दर श्लोक की रचना की थी। वे कहते हैं : (चैतन्य चरितामृत, आदि १.४) :

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

कलौ का अर्थ है यह युग, यह कलियुग अर्थात् लौह युग जो दोषों से भरा है और कलह एवं असहमतियों से पूर्ण है। श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि इस कलियुग में, जब कि प्रत्येक वस्तु में असहमति और कलह होता है, "आप सर्वोच्च भगवद्प्रेम प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं।" समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां—न केवल सर्वोच्च वरन् अत्यन्त उज्ज्वल रस अथवा दिव्य रस। पुरटसुन्दरद्युति आपका वर्ण स्वर्ण के समान है। "आप इतने दयालु हैं कि मैं सभी को यह आशीर्वाद देता हूँ (गोस्वामी लोग आशीर्वाद दे सकते हैं क्योंकि वे इन्द्रियों के स्वामी हैं) कि उन सबके हृदय में भगवान् का यह रूप अर्थात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा ही नृत्य करते हुए विराजमान रहें।"

प्रयाग में जब श्रील रूप गोस्वामी की भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु से पहली बार भेंट हुई, तो भगवान् श्रीचैतन्य सड़क

पर कीर्तन और नृत्य कर रहे थे, "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण।" उस समय भी श्रील रूप गोस्वामी ने एक श्लोक कहा : नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते। "हे भगवन्, आप सभी अवतारों में से सबसे अधिक वदान्य (उदार) हैं, क्योंकि आप कृष्ण-प्रेम (भगवद्-प्रेम) का वितरण कर रहे हैं।" कृष्णप्रेमप्रदाय ते । कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः। "आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं क्योंकि यदि आप श्रीकृष्ण न होते तो आप कृष्ण प्रेम का वितरण नहीं कर सकते थे, क्योंकि कृष्ण-प्रेम इतनी सरलता से प्राप्त नहीं होता। परन्तु आप यह प्रेम सभी जीवों को निःशुल्क वितरण कर रहे हैं।"

इस प्रकार नवद्वीप, बंगाल में संकीर्तन अभियान का आरम्भ हुआ। इस दृष्टि से बंगाली लोग अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा इस अभियान का आरम्भ उनके प्रदेश में किया गया था। श्रीमन्महाप्रभु ने भविष्यवाणी की थी :

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥

"संसार में जितने भी नगर और ग्राम हैं, सभी स्थानों में

इस संकीर्तन अभियान का प्रचार किया जाएगा।" यह उनकी भविष्यवाणी है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा के कारण, यह अभियान न्यूयॉर्क से आरम्भ होता हुआ पश्चिमी देशों में पहले से ही आरम्भ हो चुका है। हमारे संकीर्तन अभियान का, सर्वप्रथम आरम्भ सन् १९६६ में न्यूयॉर्क से हुआ। उस समय मैं न्यूयॉर्क पहुँचा और मैंने टॉमकिन्स स्क्वायर में इस हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना आरम्भ किया। मैं वहाँ तीन घण्टे तक एक छोटा-सा मृदंग लेकर कीर्तन करता रहा और ये अमेरिकन युवक एकत्र हुए तथा क्रमशः इस अभियान में सम्मिलित हो गए। इस प्रकार यह अभियान बढ़ता जा रहा है। सबसे पहले यह संकीर्तन अभियान न्यूयॉर्क के २६ सेकण्ड एवेन्यु पर स्थित एक स्टोर फ्रण्ट में आरम्भ किया गया था। उसके पश्चात् हमने सेन फ्रान्सिस्को, मॉण्ट्रियल, बोस्टन, लॉस एंजिलस, बफेलो, कोलम्बस में अपनी शाखाएँ आरम्भ कीं। अब (१९७० में) हमारी चौबीस शाखाएँ हैं, जिनमें लन्दन और हैमबर्ग की एक एक शाखा भी सम्मिलित है। लन्दन में ये सभी अमेरिकन युवक और युवतियाँ हैं और

वे प्रचार कर रहे हैं। वे न तो संन्यासी हैं, न वेदान्ती, न हिन्दू और न ही भारतीय, परन्तु उन्होंने इस अभियान को बहुत गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया है। यहाँ तक कि लन्दन टाइम्स में भी एक लेख इस शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ, "कृष्ण कीर्तन के द्वारा लन्दन विस्मित।" तो अब हमारे अभियान में अनेक व्यक्ति हैं। मेरे सभी शिष्य, कम से कम इस देश में, अमेरिकन और यूरोपियन हैं। वे कीर्तन कर रहे हैं, नृत्य कर रहे हैं और 'बैक टू गॉडहेड' नामक पत्रिका का वितरण कर रहे हैं। अब हमने अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं—श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता यथारूप, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत, ईशोपनिषद्। ऐसा नहीं कि यह हरे कृष्ण अभियान केवल एक भावुक अभियान है। आप यह न सोचें कि ये युवक किसी धार्मिक भावुकता अथवा उन्माद के कारण नृत्य कर रहे हैं। जी नहीं। हमारी पृष्ठभूमि सर्वोच्च दार्शनिक एवं ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित है।

उदाहरण के रूप में, हम भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु पर विचार करें। जब वे प्रचार कर रहे थे, तो वे मायावादी संन्यासियों के केन्द्र बनारस गए। बनारस में अधिकांश

शंकराचार्य के अनुयायी ही दिखाई पड़ते हैं। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु वहाँ थे, तो वे भगवन्नाम कीर्तन और नृत्य किया करते थे। कुछ लोगों ने इसकी अत्यधिक सराहना की और श्रीमन्महाप्रभु शीघ्र ही विख्यात हो गए। एक प्रधान संन्यासी, प्रकाशानन्द सरस्वती को, जो हजारों मायावादी संन्यासियों के नेता थे, सूचना दी गई : " बंगाल के एक युवा संन्यासी यहाँ आए हैं। वे बहुत सुन्दर ढंग से कीर्तन और नृत्य कर रहे हैं।" प्रकाशानन्द सरस्वती एक महान् वेदान्ती थे और उन्होंने इस विचार को पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, "अरे, वह तो एक छद्म संन्यासी है। वह कीर्तन और नृत्य कर रहा है, एक संन्यासी का तो यह कार्य नहीं है। संन्यासी को दर्शन और वेदान्त का अध्ययन करने में अपने को सदैव संलग्न रखना चाहिए।"

तब वहाँ उपस्थित एक भक्त, जिसे प्रकाशानन्द सरस्वती की टिप्पणी पसन्द नहीं आई, वापस आया और उसने भगवान् श्रीचैतन्य को सूचित किया कि उनकी आलोचना की जा रही है। तो उस भक्त ने सभी संन्यासियों की एक सभा का आयोजन किया और उसमें प्रकाशानन्द सरस्वती एवं

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के बीच वेदान्त पर दार्शनिक चर्चा हुई। इन घटनाओं तथा दार्शनिक चर्चाओं को "भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत" नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है। अनोखी बात तो यह है कि स्वयं श्रीप्रकाशानन्द अपने सभी शिष्यों के साथ वैष्णव बन गए।

उसी प्रकार, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने समय के सर्वश्रेष्ठ तार्किक श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ भी शास्त्रार्थ किया। श्री भट्टाचार्य भी एक मायावादी (निराकारवादी) थे और वे भी परिवर्तित हो गए। तो भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का अभियान कोरी भावुकता नहीं है। यदि कोई इस संकीर्तन अभियान को दर्शन और तर्क के द्वारा समझना चाहता है, तो हमारे पास अत्यधिक सम्पन्न पृष्ठभूमि है। इसके लिए पर्याप्त अवसर दिया जाता है, क्योंकि यह अभियान विज्ञान एवं वेदों की सत्ता (प्रामाणिकता) पर आधारित है। परन्तु यह सब सरलीकृत किया हुआ है। इस अभियान की सुन्दरता तो यही है। चाहे कोई महान् विद्वान्, दार्शनिक अथवा एक बालक हो, तो भी वह बिना किसी कठिनाई के इस अभियान में भाग ले सकता है। आत्म-साक्षात्कार के अन्य साधन जैसे ज्ञानमार्ग

या योगमार्ग भी प्रामाणिक हैं, परन्तु इस युग में उनका अभ्यास करना सम्भव नहीं है। यही वेदों का निर्णय है :

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापर परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भागवत १२.३.५२)

सत्ययुग अर्थात् स्वर्णयुग में ध्यानयोग सम्भव था। उदाहरण के लिए, वाल्मीकि मुनि ने सिद्धि पाने के लिए साठ हजार वर्षों तक ध्यान किया था। तो हमारी इतनी लम्बी आयु कहाँ है? इतना ही नहीं, जैसा कि भगवद्गीता में वर्णन किया गया है, ध्यान करने की विधि के लिए व्यक्ति को किसी एकान्त स्थान का चुनाव करना होता है, उसे यह ध्यान अकेले ही करना होता है, कठोर आसन-मुद्रा पर में बैठना पड़ता है, उसे पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना पड़ता है इत्यादि-इत्यादि। इसके सम्बन्ध में बहुत से विधि-विधान हैं। इस प्रकार अष्टांगयोग ध्यान सम्भव नहीं है। यदि कोई ध्यान का स्वाँग करने से सन्तुष्ट है, तो यह दूसरी बात है, परन्तु यदि कोई सिद्धि चाहता है, तो उसे अष्टांगयोग की सभी आठों अवस्थाओं का पालन करना पड़ता है। यदि ऐसा करना

सम्भव नहीं है, तो यह व्यर्थ ही समय नष्ट करना है।

योग अथवा ध्यान के अभ्यास का चरम लक्ष्य क्या है? भगवान् अर्थात् परतत्व या परमात्मा या परम ईश्वर के सम्पर्क में आ जाना ही सभी प्रकार के योग की विधियों का लक्ष्य है। उसी प्रकार, दार्शनिक अनुसन्धान, ज्ञान मार्ग का भी लक्ष्य परब्रह्म को समझना है। निःसन्देह, ये प्रामाणिक विधियाँ हैं, परन्तु प्रामाणिक वर्णन के अनुसार वे इस कलियुग अर्थात् लौहयुग में व्यावहारिक नहीं हैं। इसलिए व्यक्ति को इस हरि-कीर्तन की विधि को अपनाना पड़ता है। कोई भी मनुष्य बिना किसी पूर्व योग्यता के, इसकी साधना कर सकता है। किसी को न दर्शन और न ही वेदान्त का अध्ययन करने की आवश्यकता है। भगवान् श्रीचैतन्य की प्रकाशानन्द सरस्वती के साथ हुई भेंट का यही तात्पर्य था।

जब भगवान् श्रीचैतन्य और प्रकाशानन्द सरस्वती के बीच वेदान्त दर्शन पर गहन चर्चा हुई, तो प्रकाशानन्द सरस्वती ने सबसे पहले श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा, "मैं समझता हूँ कि तुम अपनी युवावस्था में एक बहुत अच्छे विद्वान् थे। (वास्तव में भगवान् श्रीचैतन्य एक अत्यन्त महान् विद्वान् थे। उनका

नाम था निमाई पण्डित और सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने काश्मीर के एक महान् विद्वान् केशव काश्मीरी को हराया था।) और मैं यह भी समझता हूँ कि तुम संस्कृत के एक महान् विद्वान् हो, विशेषकर तर्क शास्त्र में तुम एक अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान् हो। तुम्हारा जन्म भी ब्राह्मण परिवार में हुआ था और अब तुम एक संन्यासी हो। तो क्या कारण है कि तुम कीर्तन और नृत्य कर रहे हो और वेदान्त का अध्ययन नहीं करते हो?" तो यह पहला प्रश्न था जो प्रकाशानन्द सरस्वती ने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा और भगवान् श्रीचैतन्य ने उत्तर दिया, "जी हाँ, इसका कारण यह है कि जब मुझे अपने गुरु महाराज के द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई, तो उन्होंने कहा कि मैं प्रथम श्रेणी का मूर्ख हूँ। 'तुम वेदान्त की चर्चा मत करो,' उन्होंने मुझसे कहा। "तुम केवल अपना समय व्यर्थ ही नष्ट करोगे। केवल इस हरे कृष्ण कीर्तन को ग्रहण करो और तुम सफल हो जाओगे।" श्रीमन् महाप्रभु का यह उत्तर था। निःसन्देह, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु मूर्ख नहीं थे और निश्चय ही वेदान्त मूर्खों के लिए नहीं है। पहले तो व्यक्ति को पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और एक

विशेष स्तर पर पहुँचना चाहिए; तभी वह वेदान्त समझ सकता है। एक-एक शब्द में अर्थों का भण्डार छिपा है और शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य के द्वारा दी गई अनेक समीक्षाओं के बहुत से बड़े-बड़े संस्कृत में ग्रन्थ हैं। परन्तु हम वेदान्त समझ कैसे सकते हैं? यह सम्भव नहीं है। भले ही एक या दो व्यक्तियों के लिए यह समझना सम्भव हो, परन्तु जनसाधारण के लिए यह सम्भव नहीं है; न ही योगाभ्यास सम्भव है। इसलिए, यदि कोई चैतन्य महाप्रभु का मार्ग, हरे कृष्ण कीर्तन, का आश्रय लेता है तो लाभ की पहली श्रेणी (किश्त) होगी : चेतोदर्पणमार्जनम्। अर्थात् केवल कीर्तन करने के द्वारा उसके चित्त से सभी मैल दूर हो जाएगी। कीर्तन कीजिए। इसमें कोई व्यय नहीं है और न ही कोई हानि। यदि कोई एक सप्ताह के लिए भी कीर्तन करता है, वह देखेगा कि आध्यात्मिक विज्ञान में वह कितनी अधिक प्रगति कर लेगा।

हम अनेक भक्तों को केवल कीर्तन के द्वारा आकर्षित कर रहे हैं और वे सम्पूर्ण दर्शन को समझ रहे हैं, तथा शुद्ध बन रहे हैं। इस संघ का अभियान केवल चार वर्ष पूर्व सन् १९६६

में आरम्भ हुआ था और अब हमारी बहुत सी शाखाएँ हैं। अमेरिकन युवक एवं युवतियाँ इसे अत्यधिक गम्भीरता के साथ ग्रहण कर रहे हैं और वे सुखी हैं। आप इनमें से किसी से भी पूछ लीजिए। चेतोदर्पणमार्जनम्—ये केवल :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

महामन्त्र के कीर्तन करने मात्र से ही अपने चित्त (हृदय) से सब गन्दी वस्तुओं को दूर कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण संकीर्तन का अगला प्रभाव है— भवमहादावाग्निनिर्वापणम्। जैसे ही हृदय से सब गन्दी वस्तुएँ दूर हो जाती हैं, वैसे ही भौतिक संसार की सारी समस्याएँ तत्काल हल हो जाती हैं। इस संसार की तुलना दावाग्नि के साथ की गई है। दावाग्नि का अर्थ होता है वन में लगने वाली भयानक आग। इस भौतिक संसार में कोई भी व्यक्ति दुख नहीं चाहता, परन्तु यह स्वयं बलपूर्वक आता हैं। भौतिक प्रकृति का यही नियम है। कोई भी अग्नि नहीं चाहता, परन्तु हम नगर में कहीं भी जाएँ, अग्नि शामक दल सदैव क्रियाशील रहता है। सदैव कहीं न कहीं आग लगी रहती है।

इसी प्रकार, ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनको कोई नहीं चाहता। कोई मृत्यु नहीं चाहता—परन्तु मृत्यु होती है। कोई व्याधि नहीं चाहता—परन्तु व्याधि आती है। कोई वृद्धावस्था नहीं चाहता—परन्तु वृद्धावस्था आती है। हमारी इच्छा, हमारी कामना के विपरीत, ये दुख वर्तमान हैं।

इस प्रकार हमें इस भौतिक संसार की अवस्था पर विचार करना चाहिए। यह मनुष्य जीवन समझने के लिए बनाया गया है—पशुओं के समान, आहार, निद्रा, भय और मैथुन में ही अपने बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ गंवाने के लिए नहीं। यह सभ्यता की प्रगति नहीं है। श्रीमद्‌भागवतम् कहता है कि यह शरीर केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए ही कठोर परिश्रम करते रहने के लिए नही बनाया गया है।

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।

(भागवत् ५.५.१)

कठोर परिश्रम करना और इन्द्रियतृप्ति के द्वारा अपने को सन्तुष्ट करना शूकरों का कार्य है, मनुष्यों का नहीं। मनुष्य तपस्या करना सीखें। विशेषकर भारत में, अनेक महान् ऋषियों, अनेक महान् राजाओं और अनेक ब्रह्मचारियों एवं

अनेक संन्यासियों ने अपना जीवन महान् तपस्या करने में व्यतीत किया है ताकि वे और अधिक निद्रा में न सो जाएँ। भगवान् बुद्ध युवराज थे, जिन्होंने प्रत्येक वस्तु को त्याग कर अपने को तपस्या में लगाया। जीवन यही है। जब महाराज भरत, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, चौबीस वर्ष के थे; उन्होंने अपना राज्य, युवा पत्नी और अपनी सन्तानों को त्याग दिया और वे तपस्या करने चले गए। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु केवल चौबीस वर्ष के थे; तो उन्होंने अपनी युवा पत्नी, माँ, और प्रत्येक वस्तु का त्याग कर दिया। ऐसे कई उदाहरण हैं। भारत तपोभूमि है, परन्तु हम इसे भूल रहे हैं। अब हम इसे तकनीकी भूमि बना रहे हैं। यह आश्चर्य की बात है कि अब भारत इस तपस्या का प्रसार-प्रचार नहीं कर रहा है, क्योंकि भारत धर्म का क्षेत्र है—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे (गीता १.१)।

इस लौहयुग में, न केवल भारत में अपितु सभी स्थानों पर प्रत्येक वस्तु निम्न कोटि की हो गई है। प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः। (भागवत १.१.१०) इस कलियुग में आयु कम हो गई है और आत्म-साक्षात्कार को समझने की

ओर मनुष्यों को कोई भी रुचि नहीं है; यदि रुचि है भी, तो वे अनेकानेक धोखेबाज नेताओं के द्वारा सदा मार्गभ्रष्ट कर दिए जाते हैं। यह युग घोर भ्रष्टाचार का युग है। अतः भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की हरे कृष्ण कीर्तन की विधि सर्वोत्तम और सर्वाधिक सरल मार्ग है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"इस कलियुग में भगवन्नाम का कीर्तन करके उन्हें माहिमान्वित करने के अतिरिक्त और कोई दूसरा धर्म नहीं है। यह सभी शास्त्रों का आदेश है। और कोई दूसरी गति (मार्ग) नहीं है, कोई दूसरी गति नहीं है, कोई दूसरी गति नहीं है।" यह वृहन्नारदीय पुराण का श्लोक है। हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। केवल हरे कृष्ण कीर्तन कीजिए और कोई दूसरा विकल्प नहीं है। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा। इस कलियुग में आत्म-साक्षात्कार करने के लिए कोई दूसरा विकल्प नहीं है। तो हमें इसको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

श्रीमद्भागवत (१२.३.५१) में इसी प्रकार एक और श्लोक है। कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः। उस

श्लोक में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को इस युग के दोषों के विषय में जानकारी दी थी। और अब कलियुग के वे सब लक्षण प्रत्यक्ष दीख पड़ रहे हैं। किन्तु निष्कर्ष में शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "प्रिय राजन्—यह कलियुग दोषों का सागर है, परन्तु इसमें एक सुअवसर है।" वह सुअवसर क्या है? कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत "केवल इस हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के द्वारा मुक्त होकर भगवान् के धाम में लौटा जा सकता है।"

यह व्यावहारिक और प्रामाणिक है तथा कोई भी स्वयं यह परीक्षण कर सकता है कि कैसे वह केवल कीर्तन करने के द्वारा उन्नति कर रहा है। यह कृष्णभावनामृत अभियान कोई नई वस्तु नहीं जिसे हमने प्रारम्भ किया है या रचा है। यह वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर, श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे आचार्यों और अन्य महाजनों के द्वारा प्रमाणित है। और विधि भी बहुत सरल है; इसमें किसी भी प्रकार की हानि नहीं है। हम किसी भी प्रकार का दाम नहीं ले रहे हैं, हम फीस नहीं मांग रहे हैं और न ही लोगों को कोई गुप्त मन्त्र देकर यह वचन दे रहे हैं कि ६ महीने के अन्दर वे भगवान् बन जाएँगे।

नहीं। यह मार्ग सभी के लिए खुला है—बालक, स्त्री, युवती, युवक एवं वृद्ध। सभी लोग कीर्तन कर सकते है और उसके परिणामों को देख सकते हैं।

और आगे उन्नति करने के लिए हम न केवल पश्चिम वर्जीनिया (अमेरिका) में अपनी कृषि परियोजना, नव वृन्दावन की स्थापना कर रहे हैं परन्तु अन्य आध्यात्मिक केन्द्रों का भी निर्माण कर रहे हैं जैसे नया नवद्वीप और नव जगन्नाथपुरी। हम सेन फ्रान्सिस्को में नव जगन्नाथ पुरी का पहले से ही आरम्भ कर चुके हैं और रथयात्रा महोत्सव मनाया जा रहा है। इस वर्ष लन्दन में भी रथयात्रा का एक महोत्सव मनाया जाएगा। तीन रथ होंगे, एक श्रीजगन्नाथ के लिए, एक श्रीमती सुभद्रा के लिए और एक श्रीबलराम के लिए। रथों को थेम्स नदी के किनारे ले जाया जाएगा। अमेरिका ने न्यु इंग्लैण्ड और न्यूयॉर्क का आयात किया है तो नव वृन्दावन क्यों नहीं? हमें इस नव वृन्दावन की विशेष रूप से स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की थी, आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्। "नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज भूमि के वृन्दावन धाम

में परम पूजनीय श्रीविग्रह हैं और उनका धाम श्रीवृन्दावन भी उसी प्रकार पूजनीय है।"

पश्चिमी युवक और युवतियाँ कृष्णभावनामृत को ग्रहण कर रहे हैं, तो उनके लिए श्रीवृन्दावन के समान एक स्थान होना चाहिए। स्वामी कीर्तनानन्द जो मेरे साथ दो वर्ष पूर्व श्रीवृन्दावन धाम, गए थे जानते हैं कि श्रीवृन्दावन कैसा है। तो मैंने उनको निर्देश दिया है कि वे कम से कम सात मन्दिरों का निर्माण करें। श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण के पाँच हजार मन्दिर हैं परन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्दिर सात हैं जिनकी स्थापना गोस्वामियों के द्वारा की गई थी। नव वृन्दावन में हमारा कार्यक्रम है—निवास करना और आर्थिक समस्याओं के हल के रूप में कृषि एवं गायों पर निर्भर रहना और शान्तिपूर्वक कृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का पालन करना तथा हरे कृष्ण कीर्तन करना। यह श्रीवृन्दावन की योजना है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥
(गीता ६.१७)

यह मानव जीवन कृत्रिम आवश्यकताओं को बढ़ाने के लिए नहीं बनाया गया है। हम शरीर का केवल निर्वाह करके सन्तुष्ट रहें और शेष समय हम अपने कृष्णभावनामृत को विकसित करने में लगाएँ ताकि इस शरीर को त्यागने के बाद हमें फिर से कोई दूसरा भौतिक शरीर लेना न पड़े और हम वापस अपने घर, भगवान् के धाम में लौट जाएँ। मनुष्य जीवन का यही आदर्श होना चाहिए।

भौतिक जीवन का अर्थ है आहार, निद्रा, मैथुन एवं संरक्षण। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है इस से बढ़कर कुछ और। पशु जीवन और मानव जीवन के बीच में भी यही अन्तर है। पशु जीवन में और मनुष्य जीवन में ये चार क्रियाएँ समान हैं—अर्थात् खाना, सोना, आत्म रक्षा करना और मैथुन करना। एक कुत्ता आहार करता है; मनुष्य भी आहार करता है। मनुष्य सोता है और कुत्ता भी सोता है। मनुष्य में कामाचार का जीवन है और कुत्ते में भी कामाचार का जीवन है। कुत्ता अपने ढंग से अपनी रक्षा करता है और मनुष्य अपने ढंग से, भले ही वह परमाणु बम का प्रयोग करे। ये चार सिद्धान्त मनुष्य और पशु दोनों के लिए समान हैं और इन

सिद्धान्तों में उन्नति करना मानव सभ्यता नहीं, वरन् पशु सभ्यता है। मानव सभ्यता का अर्थ है अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा। वेदान्त सूत्र में पहला सूत्र है, अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा—"अब ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करने का समय है।" यही मनुष्य जीवन है। जब तक मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के विषय में जिज्ञासा नहीं करता—जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्—तब तक वह पशु ही है, क्योंकि वह इन्हीं चार सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताता है। बस यही, उसे यह जानने के लिए अवश्य ही जिज्ञासा करनी चाहिए कि वह कौन है और उसे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के कष्ट क्यों झेलने पड़ते हैं। क्या इनका कोई समाधान है ? इन विषयों से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाने चाहिए। यही मनुष्य जीवन है; यही आध्यात्मिक जीवन है।

आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है मनुष्य जीवन और भौतिक जीवन का अर्थ है पशु जीवन। बस यही। हमें भगवद्गीता में अनुमोदित किए गए समाधानों को ग्रहण करना पड़ेगा। युक्ताहारविहारस्य। उदाहरण के लिए, क्योंकी मैं एक आध्यात्मिक मनुष्य बनने जा रहा हूँ, इसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं भोजन करना त्याग दूँगा। वरन् मेरे भोजन

में सन्तुलन होना चाहिए। भगवद्गीता वर्णन करती है कि कौन-सा भोजन प्रथम श्रेणी का है, अर्थात् सतोगुणी और कौन-सा रजोगुणी और कौन-सा तृतीय श्रेणी का अर्थात् तमोगुणी है। हमें स्वयं को मानव सभ्यता के सात्विक स्तर तक उठाना है, तब हम अपनी दिव्य चेतना अर्थात् कृष्णभावनामृत को पुनर्जागृत करना है। प्रत्येक वस्तु शास्त्रों में दी हुई है। दुर्भाग्यवश हम शास्त्रों से परामर्श नहीं लेते।

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥

(भागवत १.२.२०)

जब तक व्यक्ति भौतिक प्रकृति के इन तीन गुणों के बन्धनों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् को नहीं समझ सकता। प्रसन्नमनसः। हम ब्रह्मभूत स्तर पर आएँ। ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। (भगवद्गीता १८.५४) शास्त्रों में ये आदेश हैं, अतः हमें इन से लाभ उठाना चाहिए और इनका प्रचार करना चाहिए। यह एक बुद्धिमान् व्यक्ति का उत्तरदायित्व है। जन-साधारण को इतना ज्ञान है कि भगवान् महान् हैं, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं कि

भगवान् वास्तव में कितने महान् हैं। यह सूचना हमें वैदिक साहित्य से प्राप्त होगी। इस लौहयुग में हमारा कर्तव्य यही है। अर्थात् हरि-कीर्तन परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्—भगवान् का कीर्तिगान।

ध्यान एवं आत्मज्ञान

क्या ध्यान के द्वारा हमारी दिन-प्रतिदिन की समस्याएँ हल हो सकती है? क्या मृत्यु के पश्चात् जीवन है? क्या मादक पदार्थ आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकते हैं? दक्षिण अफ्रिका की अपनी यात्रा के दौरान, श्रील प्रभुपाद डरबन-नटाल मर्क्युरी पत्रिका के बिल फेल के साथ हुए एक साक्षात्कार में इनका और अन्य प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

श्रील प्रभुपाद : कृष्ण भगवान् का नाम है, जिसका अर्थ है "सर्वाकर्षक।" जब तक कोई सर्वाकर्षक न हो, तब तक वह भगवान् नहीं हो सकता। तो कृष्णभावनामृत का अर्थ है

भगवद्भावनामृत। हम सब भगवान् के क्षुद्र अंश हैं और गुण की दृष्टि से उनके समान हैं। जीवों के रूप में हमारी वही स्थिति है जो स्वर्ण के एक छोटे से अंश की स्वर्ण की बड़ी मात्रा के सामने होती है।

श्री बिल : क्या हम अग्नि के स्फुलिंगो की भान्ति हैं?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। अग्नि और स्फुलिंग दोनों ही अग्नि हैं, परन्तु एक बड़ी है और दूसरी बहुत छोटी। किन्तु हमारा भगवान् के साथ सम्बन्ध नित्य है जब कि अग्नि और स्फुलिंग के बीच का सम्बन्ध नित्य नहीं है यद्यपि वर्तमान में भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आने के कारण हम भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूल गए हैं। केवल इस विस्मृति के कारण ही हम अनेकानेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। यदि हम अपने मौलिक भगवद्भावनामृत को पुनर्जाग्रत कर सकें, तब हम सुखी हो जाएँगे। कृष्णभावनामृत का यही सारतत्त्व है। अपने मौलिक भगवद्भावनामृत को पुनर्जाग्रत करने की यह सर्वोत्तम विधि है। आत्म-साक्षात्कार की विभिन्न विधियाँ हैं परन्तु वर्तमान कलि युग में, लोग अत्यन्त पतित हैं और उन्हें कृष्णभावनामृत की सरल विधि की

आवश्यकता है। अब वे सोच रहे हैं कि उनका तथाकथित भौतिक विकास ही उनकी समस्याओं का हल है, परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। वास्तविक हल कृष्ण-भक्त बन कर इस भौतिक बन्धन से पूर्णरूपेण मुक्त होना है। चूँकि भगवान् नित्य हैं, अतः हम भी नित्य हैं, परन्तु भौतिक अवस्था में हम सोच रहे हैं, "मैं यह शरीर हूँ", और यही कारण है जो हमें बारम्बार एक शरीर से दूसरा बदलना पड़ता है। यह अज्ञानता के कारण है। वास्तव में हम यह शरीर नहीं, वरन् चिन्मय स्फुलिंग हैं अर्थात् भगवान् के अंश हैं।

बिल : तब तो शरीर आत्मा के लिए एक वाहन के समान हुआ?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। यह एक मोटरकार के समान है। जैसे आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर मोटर में जाते हैं, उसी प्रकार जीवन की भौतिक अवस्था में मन की ऊहापोह के कारण, हम सुखी बनने के प्रयत्न में एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जा रहे हैं। परन्तु कोई वस्तु हमें तब तक सुखी नहीं बना सकेगी, जब तक हम अपनी वास्तविक स्थिति को न प्राप्त करें। जो यह है कि हम भगवान् के अंश हैं और हमारा

वास्तविक प्रयोजन भगवान् का संग-लाभ करना है तथा भगवान् को सहयोग देते हुए सभी प्राणियों की सहायता करना है। सभ्य मनुष्य-जीवन लम्बे समय तक चौरासी लाख योनियों में से होते हुए विकास करने के पश्चात् प्राप्त होता है। तो यदि हम इस सभ्य मनुष्य जीवन का यह समझने के लिए लाभ नहीं उठाते कि भगवान् कौन हैं, हम कौन हैं और भगवान् के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है, और इसके विपरीत कुत्ते-बिल्लियों की भाँति इन्द्रियतृप्ति की तलाश में अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। तो हम एक महान् अवसर खो देंगे, कृष्णभावनामृत अभियान लोगों को यह शिक्षा देने के लिए है कि भगवान् को और उनके साथ हमारे सम्बन्ध को समझने के लिए प्रयास करते हुए मनुष्य-जीवन का पूर्ण रूप में किस प्रकार लाभ उठाना चाहिए।

बिल : यदि हम इस जीवन का लाभ नहीं उठाते, तो क्या हमें दूसरे जीवन में भी अवसर मिलता है ?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। मृत्यु के समय आपकी कामनाओं के अनुसार आप दूसरा शरीर पाते हैं। किन्तु यह निश्चित नहीं है कि वह मनुष्य का शरीर ही होगा। जैसे मैं पहले समझा

चुका हूँ कि चौरासी लाख विभिन्न योनियाँ हैं। मृत्यु के समय अपनी मानसिक दशा के अनुसार आप इनमें से किसी एक योनि में प्रवेश कर सकते हैं। मृत्यु के समय हम जो सोचते हैं, वह जीवन भर किए गए हमारे कार्यों पर निर्भर करता है। जब तक हम भौतिक चेतना में होते हैं, हमारे कर्म भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण में रहते हैं। भौतिक प्रकृति तीन गुणों के माध्यम से संचालित होती है—सात्त्विक, राजसी और तामसी। ये गुण तीन मूल रंगों के समान हैं—पीला, लाल और नीला। जिस प्रकार हम लाल, पीले और नीले रंगों के मिश्रण से लाखों रंग उत्पन्न कर सकते हैं, उसी प्रकार प्रकृति के गुण आपस में मिल कर अनेक प्रकार के जीवन की उत्पत्ति करते हैं। जीवन की विभिन्न योनियों में बारम्बार होने वाले इस जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए, हमें भौतिक प्रकृति के आवरण के परे जाना और शुद्ध चेतना के स्तर पर आना आवश्यक है। परन्तु यदि हम कृष्णभावनामृत के दिव्य विज्ञान को नहीं सीखते, तो मृत्यु के समय हमें अवश्य देहान्तर करना पड़ेगा, जो वर्तमान शरीर से श्रेष्ठतर या निम्न कोटि का हो सकता है। यदि हम सत्त्व गुण का अनुशीलन

करें, तो हम उच्चतर लोक में भेजे जाते हैं, जहाँ जीवन का स्तर श्रेष्ठतर है। यदि हम रजोगुण में रहते हैं, तो हमें वर्तमान अवस्था में ही बने रहना पड़ेगा। परन्तु यदि हम अज्ञानता के कारण पापकर्म करते हैं और प्रकृति के नियमों को भंग करते हैं, तो पशु या पौधों की योनि में हमारा पतन होगा। उसके पश्चात् पुनः हमें मनुष्य जीवन के स्तर तक विकास करना होगा और इस विकसित होने की प्रक्रिया में लाखों वर्ष लग सकते हैं। इसलिए मनुष्य को अवश्य ही उत्तरदायी बनना चाहिए। उसे भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध समझते हुए और उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करते हुए मानव जीवन के दुर्लभ अवसर का अवश्य ही लाभ उठाना चाहिए। तब वह विभिन्न प्रकार के जीवन में होने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट सकता है और अपने घर, भगवान् के धाम, लौट सकता है।

बिल : क्या आप सोचते हैं कि भावातीत ध्यान (ट्रान्सेनडेण्टल मेडिटेशन) लोगों की सहायता कर रहा है?

श्रील प्रभुपाद : वे यह जानते ही नहीं कि वास्तविक ध्यान क्या है। उनका ध्यान केवल एक स्वाँग है—तथाकथित

स्वामी और योगियों के द्वारा निकाली गई एक और ठग-विद्या। आप मुझसे पूछ रहे हैं कि ध्यान लोगों की सहायता कर रहा है, परन्तु क्या आप जानते हैं कि ध्यान क्या होता है?

बिल : मन को शान्त और स्थिर कर देना, इधर-उधर भटके बिना मन को एक केन्द्र पर बैठाने का प्रयत्न करना।

श्रील प्रभुपाद : वह केन्द्र क्या है?

बिल : मैं नहीं जानता।

श्रील प्रभुपाद : सभी लोग ध्यान के विषय में चर्चा तो बहुत कर रहे हैं, परन्तु कोई भी यह नहीं जानता कि ध्यान वस्तुतः क्या है? ये ठग लोग "ध्यान" शब्द का प्रयोग करते हैं, परन्तु उन ठगों को यह नहीं मालूम कि ध्यान का यथार्थ विषय क्या है। वे लोग केवल मिथ्या प्रचार की बात कर रहे हैं।

बिल : क्या लोगों को सही विचारधारा प्रदान करने में ध्यान का कोई महत्त्व नहीं है?

श्रील प्रभुपाद : जी नहीं। वास्तविक ध्यान का अर्थ है उस अवस्था को प्राप्त करना जिसमें मन भगवद्भावनामृत से

संतृप्त रहे। परन्तु यदि आप यही नहीं जानते कि भगवान् क्या हैं, तो आप ध्यान कैसे कर सकते हैं? इसके अतिरिक्त इस युग में लोगों का मन इतना अधिक उत्तेजित रहता है कि वे मन को एकाग्र नहीं कर सकते। मैंने इस तथाकथित ध्यान को देखा है; लोग केवल सोते हैं और खर्राटे भरते हैं। दुर्भाग्यवश, भगवद्भावनामृत अथवा "आत्म-साक्षात्कार," के नाम पर बहुत से ठग लोग ध्यान की अप्रामाणिक विधियों को प्रस्तुत कर रहे हैं। ये व्यक्ति वैदिक ज्ञान के प्रामाणिक ग्रन्थों से कभी भी परामर्श नहीं लेते। वे लोगों का एक अन्य प्रकार का शोषण मात्र कर रहे हैं।

बिल : औस्पेनस्की तथा गुरजीए जैसे कुछ दूसरे शिक्षकों के विषय में आपके क्या विचार हैं? भूतकाल में वे लोग पश्चिम में आप जैसा ही सन्देश लाए थे।

श्रील प्रभुपाद : हमें उनके द्वारा दी गई शिक्षाओं के विवरण का अध्ययन करना पड़ेगा, यह जानने के लिए कि वेदों की दृष्टि में वे प्रामाणिक हैं या नही। चिकित्सा विज्ञान या किसी और दूसरे विज्ञान के समान भगवद्भावना भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान केवल इसलिए भिन्न नहीं हो सकता,

क्योंकि इसको विभिन्न मनुष्यों के द्वारा अपनाया जाता है। दो और दो सभी स्थानों में चार होते हैं, पाँच अथवा तीन नहीं। इसी का नाम विज्ञान है।

बिल : क्या आप अनुभव करते हैं कि दूसरे व्यक्तियों ने भी सम्भवतया भगवद्भावनामृत की सच्ची और प्रामाणिक विधि की शिक्षा दी होगी?

श्रील प्रभुपाद : जब तक मैं उनकी शिक्षाओं का विस्तार से अध्ययन न कर लूँ, तब तक कुछ कह पाना बहुत कठिन है। ठगों की कोई कमी नहीं है।

बिल : जी हाँ, जो केवल धन पाने के लिए ध्यान का स्वाँग कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, उनकी कोई प्रामाणिक विधि नहीं है। इसलिए हम भगवद्गीता यथारूप प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें किसी व्यक्ति-विशेष की व्याख्या नहीं है। प्रामाणिकता यही है।

बिल : जी हाँ, यदि आप वस्तुओं को थोड़ा-सा भी परिष्कार करने लग जाएँ तो उनमें परिवर्तन आना अवश्यम्भावी है।

श्रील प्रभुपाद : कृष्णभावनामृत कोई नई विधि नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है और प्रामाणिक भी। इसको बदला नहीं जा सकता। जैसे ही आप इसमें परिवर्तन लाने का प्रयत्न करते हैं, वैसे ही इसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। यह शक्ति विद्युत् शक्ति के समान है। यदि आप विद्युत् उत्पन्न करना चाहते हैं, तो आपको प्रामाणिक विधि का अवश्य ही पालन करना पड़ेगा; ऋण और धन ध्रुवों को एक दूसरे से उचित रूप से जोड़ना पड़ेगा। आप एक विद्युत-उत्पादक (जनरेटर) का निर्माण मनमाने ढंग से नहीं कर सकते और विद्युत् उत्पन्न नहीं कर सकते। उसी प्रकार, प्रामाणिक अधिकारियों से कृष्णभावनामृत का दर्शन समझने की एक प्रामाणिक विधि है। यदि हम उनके उपदेशों का पालन करेंगे, तो वह विधि कार्य करेगी। दुर्भाग्यवश, आधुनिक मनुष्य के संकटपूर्ण रोगों में से एक यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सब कुछ अपने मन के अनुसार करना चाहता है। कोई भी प्रामाणिक विधि का पालन नहीं करना चाहता। इसलिए आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टिकोणों से प्रत्येक मनुष्य असफल हो रहा है।

बिल : क्या कृष्णभावनामृत अभियान की प्रगति हो रही

है?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ, अत्यधिक। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हम लाखों रुपये के ग्रन्थ बेच रहे हैं। हमारे लगभग ५० ग्रन्थ हैं और अनेक पुस्तकालयों एवं महाविद्यालयों के व्याख्याता इन ग्रन्थों को अत्यधिक सराह रहे हैं क्योंकि इन ग्रन्थों के प्रकाशित होने तक ऐसा कोई साहित्य अस्तित्व में न था। यह विश्व के लिए एक नया योगदान है।

बिल : ऐसा लगता है कि कृष्णभावनामृत में सिर का मुण्डन करना पड़ता है और गेरुए वस्त्र पहनने होते हैं। पारिवारिक जीवन में फँसा हुआ एक साधारण मनुष्य किस प्रकार कृष्णभावनामृत का अभ्यास कर सकता है।

श्रील प्रभुपाद : गेरुए वस्त्र और मुण्डित सिर आवश्यक नहीं हैं, यद्यपि ऐसा करने से उत्तम मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है इसी तरह जैसे सेना का एक अधिकारी जब अपनी यथोचित वेष-भूषा पहने रहता है तो उसे शक्ति प्राप्त होती है—वह सेना के एक अधिकारी के समान अनुभव करता है। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि यदि वह यूनिफॉर्म में न हो

तो वह युद्ध नहीं कर सकता? जी नहीं। उसी प्रकार भगवद्भावनामृत को रोका नहीं जा सकता—इसे किसी भी परिस्थिति में पुनर्जाग्रत किया जा सकता है—परन्तु इसमें कुछ विशेष अवस्थाएँ सहायक होती हैं। इसलिए हम निर्धारित करते हैं कि आप एक विशेष ढंग से रहिए, एक विशेष ढंग की वेष-भूषा पहनिए, एक विशेष ढंग से भोजन कीजिए, इत्यादि-इत्यादि। ये वस्तुएँ कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने में सहायक हैं, परन्तु ये आवश्यक नहीं है।

बिल : फिर इसका यह अर्थ हुआ कि कोई भी व्यक्ति कृष्णभावनामृत का साधक हो सकता है और साथ ही साथ अपना सामान्य दैनिक जीवन भी व्यतीत कर सकता है?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ।

बिल : मादक (नशीले) पदार्थों के विषय में आपके क्या विचार हैं? क्या वे भगवद्-साक्षात्कार के अभ्यास में सहायता कर सकते हैं?

श्रील प्रभुपाद : यदि नशीले पदार्थ (ड्रग्स) भगवद्-साक्षात्कार में सहायता कर पाते तो वे भगवान् से अधिक शक्तिशाली होते। हम इसको कैसे स्वीकार कर सकते हैं?

नशीली औषधियाँ रासायनिक पदार्थ हैं, जो भौतिक वस्तुएँ हैं। एक भौतिक वस्तु भगवान् का साक्षात्कार करने में कैसे सहायता कर सकती है, क्योंकि भगवान् तो पूर्ण रूप से आध्यात्मिक हैं। यह असम्भव है। नशीली दवाइयाँ लेने के कारण मनुष्य जो अनुभव करता है वह केवल एक प्रकार का नशा अथवा मायिक (इन्द्रजाल) है; यह भगवद्-साक्षात्कार नहीं है।

बिल : क्या आप सोचते हैं कि प्राचीन युग के महान् योगियों ने वास्तव में चिन्मय स्फुलिंग को देखा है, जिसका आपने पहले वर्णन किया था?

श्रील प्रभुपाद : "योगियों" से आपका क्या तात्पर्य है?

बिल : यह शब्द केवल उन लोगों की ओर संकेत करता है जिनको एक दूसरे स्तर की वास्तविकता का अनुभव हो चुका है।

श्रील प्रभुपाद : हम लोग तो "योगी" शब्द का उपयोग नहीं करते। हमारी वास्तविकता तो भगवद्-साक्षात्कार है, जो आध्यात्मिक स्तर पर ही आता है। जब तक हममें देहात्मबुद्धि है, तब तक हमारा ज्ञान एक प्रकार से इन्द्रियतृप्ति है, क्योंकि

शरीर इन्द्रियों से बना हुआ है। जब हम दैहिक स्तर से ऊपर उठते हैं और हम मन को ऐन्द्रिक कार्यकलापों के केन्द्र के रूप में देखते हैं तब हम मन को साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था के रूप में मानते हैं। यह मानसिक स्तर है। मानसिक स्तर से हम बौद्धिक स्तर पर आते हैं और बौद्धिक स्तर से हम आध्यात्मिक स्तर तक उठ सकते हैं। अन्ततः हम इस आध्यात्मिक स्तर से भी ऊपर उठ सकते हैं, और एक प्रौढ़ आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाते हैं। भगवान् के साक्षात्कार की ये विभिन्न अवस्थाएँ हैं। किन्तु, इस युग में लोग इतने पतित हो चुके हैं कि शास्त्र विशेष रूप से इसका अनुमोदन करते हैं कि लोग भगवन्नाम :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

के कीर्तन मात्र से सीधे ही आध्यात्मिक स्तर पर आएं। यदि आध्यात्मिक स्तर पर हम इस अभ्यास का अनुशीलन करें, तो हम तत्काल ही अपने आध्यात्मिक स्वरूप को अनुभव कर सकते हैं और तब भगवद्-साक्षात्कार की विधि बहुत ही शीघ्र सफल हो जाती है।

बिल : आजकल बहुत से लोग यह कह रहे हैं कि हमें सत्य का अन्वेषण अपने अन्दर करना चाहिए, इन्द्रिय-युक्त बाहरी संसार में नहीं।

श्रील प्रभुपाद : अपने भीतर अन्वेषण करने का यह अर्थ है कि आप यह जानें कि आप एक आत्मा हैं। जब तक आप यह नहीं समझते कि आप शरीर नहीं वरन् आत्मा हैं, तब तक आन्तरिक दृष्टि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सर्वप्रथम तो हमें यह अध्ययन करना है, "क्या मैं यह शरीर हूँ अथवा मैं इस शरीर के भीतर स्थित कोई वस्तु हूँ?" दुर्भाग्य से, किसी भी विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय की शिक्षा नहीं दी जाती। सभी लोग सोच रहे हैं, "मैं यह शरीर हूँ।" उदाहरण के लिए, इस देश में सभी स्थानों पर लोग सोच रहे हैं, "मैं दक्षिणी अफ्रीकन हूँ, वे भारतीय हैं, वे ग्रीक हैं," इत्यादि-इत्यादि। वास्तव में सारे विश्व के लोग देहात्मबुद्धि में हैं। कृष्णभावनामृत का आरम्भ तभी होता है जब मनुष्य इस देहात्मबुद्धि से ऊपर उठ जाता है।

बिल : तो इसका अर्थ है कि चिन्मय स्फुलिंग को पहचानना पहला कदम है?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। शरीर के भीतर स्थित आत्मा के अस्तित्व को पहचानना पहला कदम है। जब तक मनुष्य इस साधारण तथ्य को नहीं समझ पाता तब तक आध्यात्मिक प्रगति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

बिल : क्या यह केवल बौद्धिक दृष्टिकोण से समझने का प्रश्न है?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ, आरम्भ में ऐसा ही है। ज्ञान के दो विभाग होते हैं—सैद्धान्तिक (सिद्धान्त सम्बन्धी) और व्यावहारिक। पहले हमें आध्यात्मिक विज्ञान को सिद्धान्त के रूप में समझना है; उसके पश्चात् उस आध्यात्मिक स्तर पर कार्य करते हुए, हम व्यावहारिक स्तर पर आ जाते हैं। दुर्भाग्यवश आजकल प्रायः सभी लोग देहात्मबुद्धि के अन्धेरे में हैं। इसलिए यह अभियान बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह सभ्य मनुष्यों को उस अँधेरे से बाहर निकाल सकता है। जब तक लोगों के जीवन में देहात्मबुद्धि की धारणा रहती है, तब तक वे पशुओं से श्रेष्ठतर नहीं हैं। "मैं कुत्ता हूँ," "मैं बिल्ली हूँ," "मैं गाय हूँ।" पशु ऐसा ही सोचते हैं। जैसे ही कोई मनुष्य पास से निकलता है कुत्ता यह सोचते हुए भौंकने

लगेगा, "मैं कुत्ता हूँ। मुझे यहाँ प्रहरी के रूप में नियुक्त किया गया है।" उसी प्रकार, यदि मैं कुत्ते की प्रवृत्ति अपना कर विदेशियों को चुनौती देता हूँ—"आप इस देश में क्यों आए हैं? आप मेरे क्षेत्र में क्यों आए हैं?" तब कुत्ते में और मुझमें अन्तर ही क्या रह गया?

बिल : कोई अन्तर नहीं रहेगा। अब इस विषय में थोड़ा-सा परिवर्तन करें; क्या आध्यात्मिक जीवन का अभ्यास करने के लिए यह आवश्यक है कि भोजन सम्बन्धी कुछ विशेष आदतों का पालन किया जाये?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ, सम्पूर्ण विधि हमें शुद्ध करने के लिए बनाई गई है और भोजन उस शुद्धिकरण का एक अंग है। एक कहावत है, "जैसा खाओ अन्न, वैसा बने मन" और यह एक तथ्य है। हमारी शारीरिक बनावट और मानसिक वातावरण इस आधार पर जाने जाते हैं कि हम कैसे और क्या खाते हैं। अतः शास्त्र यह संस्तुति करते हैं कि कृष्णभावनाभावित बनने के लिए आपको कृष्ण-प्रसाद अर्थात् श्रीकृष्ण के द्वारा किए गए भोजन का अवशेष ही खाना चाहिए। यदि टी.बी. (क्षयरोग) का कोई रोगी कुछ

भोजन करे और आप उसके बचे हुए भोजन को खा लें तो आपमें भी टी.बी. के जीवाणु आ जाएँगे। उसी प्रकार, यदि आप कृष्ण-प्रसाद ग्रहण करें, तो आपमें भी कृष्णभावनामृत अपने आप ही आ जाएगा। इस प्रकार हमारी विधि यह है कि हम कोई भी वस्तु तत्काल नहीं खा लेते। पहले हम भोजन श्रीकृष्ण को समर्पण करते हैं, फिर उसे ग्रहण करते हैं। ऐसा करने से हमें कृष्णभावनामृत की प्रगति में सहायता मिलती है।

बिल : आप सब लोग शाकाहारी हैं?

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ, क्योंकि कृष्ण शाकाहारी हैं। श्रीकृष्ण कुछ भी खा सकते हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं परन्तु भगवद्गीता (९.२६) में वे कहते हैं : पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। "भक्तगण प्रेमा-भक्ति के साथ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो कुछ भी मुझे अर्पण करते हैं, उसे मैं स्वीकार कर लूँगा।" भगवान् कभी नहीं कहते, "मुझे मांस और शराब दो।"

बिल : और तम्बाकू के विषय में?

श्रील प्रभुपाद : तम्बाकू भी एक नशीली वस्तु है। हम

लोग देहात्मबुद्धि की धारणा के कारण पहले से ही नशे में हैं और हम लोग यदि इस नशे को और बढ़ाते जाएँ तो हमारा सर्वनाश सुनिश्चित है।

बिल : आपका तात्पर्य है कि मांस, मदिरा और तम्बाकू जैसी वस्तुएँ दैहिक भावना को सुदृढ़ करती हैं।

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। कल्पना कीजिए आपको कोई रोग है और आप उसकी चिकित्सा करना चाहते हैं, तो आपको चिकित्सक के निर्देशों का पालन करना ही पड़ता है। यदि वह कहता है, "इसे मत खाओ, केवल इस वस्तु का भोज़न करो" तो आपको उसका निर्देश मानना ही पड़ता है। उसी प्रकार हमारे पास भी देहात्मबुद्धि रूपी रोग से मुक्त होने के लिए एक नुस्खा है—हरे कृष्ण कीर्तन, कृष्ण-लीलाओं का श्रवण और कृष्ण-प्रसाद का ग्रहण। कृष्णभावनामृत का अभ्यास करना ही चिकित्सा है।

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ६९ वर्ष की अवस्था में सन १९६५ में अपने गुरु महाराज के आदेशानुसार अंग्रेजी भाषी विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए अमरीका गये। बारह वर्षों की अल्प अवधि में उन्होंने वैदिक साहित्य के अंग्रेजी अनुवाद और भाष्य के रूप में ५० से अधिक ग्रंथरत्न प्रस्तुत किये। उनके द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित वैदिक ग्रंथ उनकी अधिकृतता, गहराई व स्पष्टता के कारण विद्वत्समाज में सम्मानप्राप्त तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में मान्यताप्राप्त हैं। इसके साथ साथ ही कृष्णभावनामृत का प्रचार करने हेतु वे सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर भ्रमण करते रहे। सन १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना न्यूयॉर्क में की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ को अपने कुशल निर्देशन से सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, गुरुकुलों एवं कृषि-समुदायों का एक बृहद् संगठन बना दिया। सन् १९७७ में उन्होंने कृष्ण की प्रिय एवं पावन लीलाभूमि वृन्दावन में लौट कर इस धरा-धाम से प्रयाण किया। उनके शिष्यगण उनके द्वारा स्थापित आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं। ☀
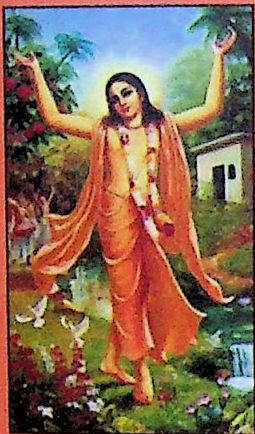
"द्वापर युग में पञ्चरात्रि की
विधि से पूजा करके कृष्ण
या विष्णु को तुष्ट किया
जा सकता है, किन्तु
कलियुग में केवल भगवान्
के नाम कीर्तन द्वारा
भगवान हरि को तुष्ट किया
और पूजा जा सकता है।"

(नारायण संहिता)